अनुक्रम

अश्लील फिल्म से नहीं—चित्त से मुक्ति

[अहमदाबाद में देश के जलते प्रश्न प्रवचन माला में भगवान् श्री रजनीश द्वारा दिया गया प्रवचन का एक अंश]

एक मित्र ने पूछा है कि साधु-संन्यासी सदा फिल्मों के विरोध में हैं, तो आपका क्या कहना है ?

यह अंतिम प्रश्न है। इस सम्बन्ध में बात कर लेनी उचित है, क्योंकि इधर भारत में ऐसा समझा जा रहा है कि फिल्मों के कारण लोग बिगड़े जा रहे हैं, यह बिलकुल उलटी बात है। बिगड़े हुए लोगों की वजह से अच्छी फिल्में बनानी मुश्किल हो रही हैं। फिल्म की वजह से कोई नहीं बिगड़ रहा है। कोई फिल्म किसी को बिगाड़ नहीं सकती। लेकिन लोग अगर बिगड़े हैं तो अच्छी फिल्म को चलाना मुश्किल है। और फिल्म एक अर्थ में बहुत बड़ा काम कर रही हैं कि जो काम आप करना चाहते हैं, और नहीं कर पाते, उसे फिल्म में देखकर राहत मिल जाती है और शांति से घर लौट आते है। अगर फिल्में न हों तो यह काम आप सड़कों पर खड़े होकर करेंगे और उपद्रव बढ़ेगा, कम नहीं होगा। इसके पीछे मनोवैज्ञानिक कारण हैं। अगर डिटेक्टिव फिल्म में हत्या की कोई घटना हो और अपराधी की कार के पीछे पुलिस लगी हो, तो आपने देखा है कि फिल्म देखने वाले सारे लोगों की रीढ़ सीधी हो जाती है, फिर कोई कुर्सी से टिका नहीं रह जाता। उनके भीतर भी कुछ हो रहा है, वे भी तैयार हो गए हैं, जैसे कि कार की स्टेयरिंग पर वे खुद ही बैठे हों। उनके हाथ-पैर तैयार हो गए हैं, सांस बंद हो गई हैं, पलकों ने झपकना बन्द कर दिया है। कहीं एक क्षण चूक न जाये तो चूक जायं। इस फिल्म में उनके भीतर जो उत्तेजना की आकांक्षा है, वह तृप्त हो जाती है।

अगर फिल्में अलग कर दी जायं तो यह उत्तेजना हमें और रास्तों से लानी पड़ेगी।

विनोबा जी, आचार्य तुलसी और इस तरह के लोग फिल्मों के बड़े विरोधी हैं। वे कहते हैं फिल्में अश्लील हैं। अश्लील फिल्में नहीं बननी चाहिएँ। और मैं आपसे कहता हूँ कि अश्लील फिल्मों के कारण आदमी कम अश्लील है। अगर फिल्में अश्लील न हों तो आदमी को अश्लील होना पड़ेगा। और कौन कहता है कि फिल्मों की वजह से अश्लीलता है! कालिदास ने तो फिल्म नहीं देखी थी, जहां तक मेरा खयाल है। लेकिन अगर उनके नाटक पढ़ें तो आज की कोई फिल्म उतनी अश्लील नहीं है जितना कालिदास रहे हैं। कालिदास जंगल में भी जायं, तो फलों में उन्हें फल नहीं दिखाई पड़ते हैं, स्त्रियों के स्तन ही दिखाई पड़ते हैं। तो क्या यह दिमाग फिल्म से लिया गया था? कालिदास का दिमाग फिल्म ने खराब किया था? खजुराहो के मन्दिरों को कोई फिल्म एक्टरों ने खोदा है? खजुराहो के मन्दिरों पर मैथुन के चित्र किसने खोदे हैं? यह तो आज के नहीं हैं। कामसूत्र किसने लिखा है? यह तो आज का नहीं है। और भर्तृहरि के शृंगारशतक किसने रचे हैं? यह तो इसमें फिलम प्रोड्यूसर का कोई भी हाथ सिद्ध नहीं किया जा सकता है। आदमी जो चाह रहा है हमेशा से, वह अलग-अलग माध्यम में उसे देना पड़ा है। आदमी बदले तो बदलाहट हो सकती है, माध्यम बदलने से कुछ नहीं हो सकता। अब वे कहते हैं कि नग्न तस्वीरें न हों, लेकिन आदमी नग्न तस्वीरें देखना चाहता है।

मैं दिल्ली में था। साधुओं ने एक सम्मेलन किया था, अश्लील पोस्टरों के खिलाफ। भूल से वे मुझे बुला ले गए, क्योंकि लोग भूल से मुझे बुला लेते हैं तब पीछे बहुत पछताते हैं। उन्होंने समझा, अश्लील पोस्टर के खिलाफ हूँ। अश्लील पोस्टर के खिलाफ कौन नहीं बोलेगा! तो मैं बड़ा हैरान हुआ। मैंने उन साधुओं से कहा कि पहली बात तो यह है कि आप साधु हो, आप अश्लील पोस्टर देखने गये क्यों? आप किसलिए गए? तुम्हें किसी ने बुलाया था अश्लील पोस्टर देखने को? तुम किसलिए अश्लील पोस्टर देखने जाते हो? तुम्हें किसलिए परेशानी है? उन्होंने कहा कि हम तो इसलिए देखने जाते

हैं कि लोग उनको देखकर बिगड़ न जायँ। अगर आप सिनेमा में पकड़े जायं और आप विद्यार्थी हैं, तो आपका शिक्षक आपको समझा-येगा; और अगर शिक्षक पकड़ा जाय, तो वह कहेगा कि हम देखने आये थे कि कौन-कौन विद्यार्थी आये थे। बड़े मजे की बात है। ये साधु आदमी पोस्टर देखने जाते हैं, बेचारे कृपा करके, ताकि दूसरे लोग न बिगड़ जायं और सच बात यह है कि साधु जितना नग्न तस्वीरें देखना चाहते हैं उतना कोई भी नहीं देखना चाहता, क्योंकि साधु ने जिंदगी से अपने को तोड़ लिया है। उसकी आकांक्षायें भीतर दबी रह गई हैं।

मैंने उन संन्यासी से कहा, आप क्यों परेशान हैं अश्लील पोस्टरों से? और ध्यान रहे, आदमी नग्न स्त्री को देखना चाहता है बजाय अश्लील पोस्टरों को मिटाने की कोशिश के। क्यों? यह सोचना जरूरी है कि आदमी नग्न स्त्री में इतना उत्सुक क्यों है? उत्सुकता का कारण क्या है? उत्सुकता का कारण है और कारण साधु-संतो ने ही दिया है। कारण यह है कि हम स्त्री-पुरुष को इतने दूरी पर खड़ा करते हैं कि करीब-करीब वे एक जाति के प्राणी नहीं, दो अलग जाति के जानवर हो जाते हैं। उन्हें अलग-अलग बड़ा करके फासले को इतना बड़ा करते हैं कि एक दूसरे को जानने की उत्सुकता शेष रह जाता है। और फासले इतने ज्यादा होते हैं कि जानने का मौका ही नहीं मिलता है एक दूसरे को। अगर लड़के और लड़कियों को करीब और निकट बड़ा किया जा सके, तो वे एक दूसरे के साथ खेलते हों; दौड़ते हों, तैरते हों तो अश्लील पोस्टर धीरे-धीरे विदा हो जायेंगे।

अभी मैंने एक घटना पढ़ी। सिडनी में एक नग्न अभिनेत्री को लाया गया दर्शन के लिए। सिडनी बीस लाख की आबादी का शहर है। बहुत प्रचार किये गये। दो आदमी टॉकीज में देखने गये, सिर्फ दो आदमी! अहमदाबाद में कितने आदमी जाते, सोच सकते हैं? अगर दो आदमी भी पीछे रह जाते तो चमत्कार है! सभी लोग जाते, जाना ही पड़ता। इसमें कोई उपाय नहीं था, फिर इतना फर्क पड़ता कि कुछ लोग सामने के दरवाजे से जाते, कुछ सज्जन लोग पीछे के दरवाजे से जाते। यह फर्क पड़ सकता था, लेकिन जाना तो पड़ता। दो आदमी देखने आये सिडनी में, एक चमत्कार है। एक नग्न सुन्दरी

का नृत्य हो रहा हो और पूरी टॉकीज खाली हो और केवल दो आदमी देखें, यह बात क्या है ? सिडनी में क्या बात हो गई है ? स्त्री और पुरुष इतने निकट बड़े हुए हैं कि यह बात बेहूदी है। अगर हम यह घोषणा करें कि एक आदमी का नंगा नाच दिखाया जायेगा, तो क्या आप देखने जायेंगे ? नहीं जायेंगे, क्योंकि नंगे आदमी आप देख चुके हैं और कोई कारण नहीं है।

बर्टेन्ड रसेल ने अपनी आत्म-कथा में लिखा है कि एक जमाना ऐसा था कि इंग्लेंड में विक्टोरियन युग में स्त्रियां इतना बड़ा घाघरा पहनती थीं कि उनके पैर का अंगूठा भी नहीं दिखाई पड़ता था। उसने लिखा है कि उस जमाने में बड़ी अजीब बात थी कि अगर किसी स्त्री का पैर का अंगूठा दिख जाय तो बड़ी रस-विमुग्धता पैदा हो जाती थी--चित्त रसमग्न हो जाता था—काव्य का झरना बहने लगता था पैर का अंगूठा देखकर। अभी हम कहेंगे कि पैर का अंगूठा देखकर कविता निकलती थी, पागल हो गये थे लोग ! अब तो पैर के अंगूठे सब तरफ दिखाई पड़ रहे हैं, तो कोई कविता नहीं निकलती। सिडनी में नग्न स्त्री को देखकर भी कोई कविता नहीं निकली। हिन्दुस्तान में अभी भी निकलती है।

अश्लील फिल्म बनानी पड़ती है, अश्लील पोस्टर लगाना पड़ता है, क्योंकि हमारी मांग है। और अश्लील पोस्टर न लगेगा, नग्न फिल्म न होगी तो खतरे में होंगे। सड़क पर वस्त्र पहनकर स्त्री को न चलने देंगे। स्त्री सड़क पर निर्वस्त्र नहीं की जा रही है, क्योंकि निर्वस्त्र स्त्रियों को देखने की टॉकीज में व्यवस्था है, मौका मिल जाय, हिन्दू-मुसलमान दंगा हो जाय, फिर हम फिल्म की फिक्र करते हैं ? फिर जो भी स्त्री मिल जाय, उसे नग्न कर लेते हैं। हम कर लेंगे। साधु-संत उससे छुटकारा नहीं दिला सकते, क्योंकि वे ही उस वृत्ति को जन्माने में मूलभूत कारण हैं।

स्त्री और पुरुष को निकट लाना पड़ेगा, सरलता से निकट लाना पड़ेगा। वे जितने निकट आ जायेंगे उतने ही उनके फासले से पैदा हुई बीमारियां दूर हो जायेंगी। भारत में जलता हुआ प्रश्न यह भी है। विशेषकर युवकों के सामने।

सौंदर्य का मन्दिर

एक मित्र आये। उन्होंने कहा कि मैं तो साठ वर्ष का हो गया हूँ, लेकिन अब भी सुन्दर स्त्री को देखता हूँ तो बेचैन और परेशान हो जाता हूँ। जीवन भर मैंने कोशिश की है कि अपने मन से स्त्रियों को अलग कर लूँ, लेकिन इस उम्र में भी स्त्री मेरा पीछा कर रही है।

मैंने कहा कि वह पीछा करती चली जायेगी। आप कब्र में चले जायेंगे और वह पीछा करती चली जायेगी। आप पीछा करवा रहे हैं। जीवन की कला स्त्री से भागना नहीं सिखाती है सौंदर्य से आंखें फेरना नहीं सिखाती है, बल्कि इस जिज्ञासा में और ऊपर आना कि जो सौंदर्य दिखाई पड़ रहा है, वह कहां से आ रहा है। सौदर्य क्या है ? अगर एक स्त्री में भी सौंदर्य दिखाई पड़े तो दिखाई पड़ सकता है। फूल में दिखाई पड़ सकता है तो स्त्री में क्यों नहीं, पुरुष में क्यों नहीं, आंखों में क्यों नहीं, शरीर में क्यों नहीं ? फूल भी एक शरीर है, चांद भी एक शरीर है, तारे भी एक शरीर हैं। तो आदमी के शरीर का ही कसूर है ? लेकिन अगर सौंदर्य का विरोध न होता, अगर निंदक की दृष्टि न होती, तो शायद उस सौंदर्य में गहरा प्रवेश होता, जहां से जीवन के सारे आनन्द और सारी खुशियां आती हैं, तो शायद फिर एक स्त्री मन्दिर बन जाती, उसके भीतर परमात्मा दिखाई पड़ जाता। तो मैं नहीं कहता कि आप भागें इस सौंदर्य से, रूप से, संगीत से, सुगन्ध से, सुवास से, स्वाद से किसी से भी मत भागें। सभी के भीतर खोज करें कि जो आकर्षित कर रहा है, जरूर वहां कहीं भीतर परमात्मा होगा।

मुक्त यौन

उपनिषद् में एक कहानी है, सत्यकाम जावाल की। वक्त बदल जाता है इसलिये हम कहानी को बढ़िया रूप दे देते हैं। सत्यकाम गुरु के आश्रम गया तो गुरु ने पूछा, तेरे पिता का नाम क्या है ? तो वह वापिस लौटा। उसने अपनी मां को कहा कि मेरे पिता का नाम क्या है ? तो उसकी मां ने कहा, जब मैं युवा थी और तेरा जन्म हुआ तो बहुत से लोगों की मैं सेवा करती थी। कौन तेरा पिता है, मुझे पता नहीं। तो तू जा वापस। अपने गुरु को कह देना सत्यकाम मेरा नाम है; जाबाला मेरी माँ का नाम है, इसलिये सत्यकाम जाबाल आप मुझे कह सकते हैं। और मेरी मां ने कहा है कि जब वह युवा थी तो बहुत लोगों के साथ सम्पर्क में आयी। पता नहीं पिता कौन है। सत्यकाम वापस गया। उसने गुरु से कहा कि मेरी मां ने कहा है कि जब मैं युवा थी तब बहुत लोगों के संपर्क में आयी, पता नहीं कि तेरा पिता कौन है। इतना ही उसने कहा कि मेरा नाम सत्यकाम है और मां का नाम जाबाला है इसलिये आप मुझे सत्यकाम जाबाला कह सकते हैं।

मैंने तो सुना है, कोई कह रहा था कि जबलपुर जाबाल के नाम पर ही निर्मित है। पता नहीं मुझे, मुझे कोई कह रहा था। हो सकता है। लेकिन गुरु ने कहा कि अब तुझे मैं ले लेता हूँ, क्योंकि मैं मान लेता हूँ कि तू निश्चित ही ब्राह्मण है, क्योंकि इतना सच सिर्फ ब्राह्मण ही बोल सकता है।

ध्यान और नग्नता

[ध्यान शिविर, माउण्ट आबू (अप्रैल, ७३) में भगवान श्री द्वारा दिया गया प्रश्नोत्तर प्रवचन]

कुछ मित्रों ने बहुत से प्रश्न पूछे हैं। सभी प्रश्न साधना के समय नग्न होने के सम्बन्ध में पूछे गये हैं। एक मित्र ने पूछा है कि शिविर में नग्नता पर रोक क्यों लगाई गई है? क्या उसका उपयोग नहीं है?

नग्नता का तो बहुत उपयोग है। सिर्फ नग्नता-नग्नता ही नहीं है। इसीलिए तुम्हारे वस्त्रों के साथ तुम्हारी सभ्यता, तुम्हारी संस्कृति, तुम्हारी शिक्षा, तुम्हारे संस्कार सभी जुड़े हुए हैं। उन्हें उतार कर रखते ही वह सब भी जो तुम्हारे उपर चढ़ा है वस्त्रों की भाँति, उतार कर रख दिया जा सकता है। नग्न होने का भय ही यही है कि मैं जैसा हूं वैसा ही दिखाई न पड़ जाऊँ। बाह्य नग्नता तो प्रथम चरण है। वस्तुत: तो नग्न भीतर होना है कि मैं जैसा हूँ वैसा ही प्रगट हो जाऊँ; कोई नकाब, कोई चदरा, कोई मुखौटा, कोई ऊपर का आवरण, जो झूठा है मेरे ऊपर न रहे। लेकिन मनुष्य क्योंकि बाहर ही जीता है इसलिए बाहर की नग्नता भी भीतर की नग्नता की तरफ सहयोगी होती है। नग्न होने में भय भी लगता है क्योंकि वस्त्रों ने तुम्हें वह रूप दिया है, जो तुम्हारे शरीर पर नहीं है। वस्त्रों ने तुम्हें ढाँक रखा है, वस्त्रों ने तुम्हें छिपा रखा है, दूसरों की आँखों से, वस्त्रों के कारण तुम बच जाते हो।

नग्न खड़े होने का अर्थ है 'मैं जैसा हूँ—भला-बुरा, सुन्दर असुन्दर वैसा प्रकट हूँ और अपने को छिपाता नहीं।' यह एक प्रतीक है और सुबह के ध्यान में, दूसरे चरण में, (ध्यान-शिविर में सुबह

के प्रवचन के बाद भगवान श्री सक्रिय ध्यान करवाते हैं जिस में ध्यान के चार चरण होते हैं। (१) तीव्र साँस की भीतर चोट करना (२) चित्त में छिपे विकारों-तनावों का रेचन करना (३) हू-हू का सतत मंत्र उच्चारण करना व (४) विश्राम में प्रवेश करना।) जब कि मैं तुमसे कहता हूँ कि जो भी तुम्हारे भीतर हो उसे प्रकट कर लो, तो स्वभावत: वस्त्रों का फैंक देने का ख्याल भी पैदा होता है। और वस्त्रों को जो उतार कर रख देता है, उसे दूसरे चरण में, अपनी विक्षिप्तता को प्रकट करने में ज्यादा आसानी हो जाती है। क्योंकि जो नग्न होने को राजी हो गया, उसे अब दूसरे की चिन्ता नहीं है। अब वह चीख भी सकता है। चिल्ला भी सकता है। नाच भी सकता है। दूसरे की चिन्ता वस्त्रों के साथ ही जैसे उतर गयी। दूसरे क्या कहेंगे, जिस को इस बात का भय है, वह वस्त्र भी नहीं उतार पायेगा।

सहयोगी है कि वस्त्रों को उतार कर रख कर ही सुबह के ध्यान में प्रवेश किया जाए। लेकिन कुछ साधक इतना साहस नहीं भी कर पाते तो बीच में भी दूसरे चरण में उनको ऐसा ख्याल आ सकता है कि वस्त्र अलग कर दें, तब भी वस्त्रों को अलग कर देना उपयोगी है। ये उपयोगिता अगर वस्त्र सिर्फ वस्त्र ही होते तो न होती, वस्त्रों के साथ बहुत कुछ जुड़ा है। जब तुम बच्चे की भांति पैदा हुए थे, तो नग्न थे, जब भी तुम पुन: नग्न खड़े हो जाते हो, तुम अपने बचपन में वापिस लौट जाते हो।

वस्त्र तुम पर आरोपित किये गये, जिस दिन से तुम्हारे ऊपर वस्त्र आरोपित किये गये, उसी दिन से तुम्हें शरीर का बोध हुआ। उसी दिन से शरीर में कुछ पाप है। शरीर में कुछ छिपाने योग्य है। शरीर में कुछ ढाँकने योग्य है। शरीर में कुछ बुरा है, ये सारे भाव पैदा हुए। छोटे बच्चों को उसके माँ-बाप अगर वह नग्न बाहर आ जाये, तो डाँटेंगे, डपटेंगे। तो शरीर के प्रति एक निन्दा का भाव वस्त्रों के साथ ही पैदा हुआ। शरीर में कुछ बुरा है। विशेष कर जननेन्द्रियाँ बुरी हैं, छिपाने योग्य हैं, उसके साथ ही तुम्हारा शरीर भी दो हिस्सों में बँट गया। नीचे का शरीर कुछ बुरा, ऊपर

का शरीर कुछ अच्छा, ये जो विभाजन है शरीर के भीतर, उसने तुम्हारी जीवन चेतना को भी दो खण्डों में बाँट दिया। आमतौर से लोग अपने सिर को ही अपना मानते हैं। बाकी शरीर को अपना नहीं मानते हैं। बहुत से लोग तो ऊपर के हिस्से को अपना मानते हैं, बाकी नीचे के हिस्से को ऐसा मानते हैं कि मजबूरी है। इस से तुम्हारे भीतर की जीवन ऊर्जा खंडित हो गयी है।

बच्चे के भीतर जीवन ऊर्जा अखंड होती है। उसका वर्तुल होता है। तुम्हारे भीतर वह वर्तुल नहीं है। लेकिन जिस क्षण तुम साहस करते हो और वस्त्रों को उतार कर रख देते हो, उसी क्षण वस्त्र पहनने के दिन से, वस्त्र जबरदस्ती पहनाये जाने के दिन से अब तक तुम्हारे चित्त पर जो शरीर के संबन्ध में निन्दा के भाव थे, वे भी हट जाते हैं। तुम्हें ख्याल ही न होगा कि हम इतने वस्त्रों में रहते हैं कि धीरे-धीरे हमें खुद भी भूल गया है कि वस्त्रों के बिना हमारा शरीर क्या है।

वस्त्रों में हम एक कद की तरह हैं, वस्त्र हटते ही हम मुक्त हो जाते हैं। पशु पक्षियों की तरह मुक्त हो जाते हैं। उस मुक्तता का उपयोग किया जा सकता है। इसलिए उपयोगिता तो बहुत है। लेकिन इस शिविर में मजबूरी थी। मजबूरी ऐसी थी कि या तो शिविर हो तो नग्नता की सुविधा न हो सकेगी, नग्नता की सुविधा करनी हो, तो शिविर न हो सकेगा। तो इन दोनों में जो कम बुराई थी, वही चुन लेना उचित समझी गयी।

क्योंकि राजस्थान सरकार ने केवल दो दिन पहले खबर भेज दी कि वे अपना कोई मैदान, अपनी कोई संस्था, अपना कोई भवन नहीं दे सकेंगे। दो दिन पहले कोई भी व्यवस्था होनी मुश्किल थी और साधक सारी दुनिया से आ चुके थे। भारत के साधक तो आने वाले थे, भारत के बाहर के साधक आ चुके थे। और कोई उपाय नहीं था और सरकार को इतना तो हक है ही कि वे जमीन के लिए इन्कार कर दे, कि वहाँ नग्न कोई नहीं हो सकेगा।

उसके हुक्म में भी कोई बुराई नहीं है। जमीन उनकी है। हमारे पास अपनी कोई जमीन नहीं है। यहाँ इस पैलेस होटल में, जहाँ

व्यवस्था की गई है, होटल व्यस्वथापकों की भी मजबूरी है। वे भी साहस नहीं जुटा सकते कि नग्न होने का मौका दें, क्योंकि उनके लिए सवाल व्यवसाय का है। तो इसलिए मजबूरी थी कि सुबह की नग्नता पर प्रतिबन्ध लगा देना पड़ा। लेकिन इससे आप ये न समझें कि हमने कोई साधन की पद्धति बदल दी। और इससे आप ये भी न समझें कि सरकार के सामने कोई हम झुक गये (तालियाँ)। ये सारी बातें नहीं हैं। न तो कोई झुकने का सवाल है, न कोई व्यवस्था बदलने की बात है।

सरकार ने हमें एक सुविधा ही दी और उससे लाभ ही होगा कि हम अपनी ही व्यवस्था शीघ्र कर पायेंगे जहाँ किसी का प्रतिबन्ध न हो—(तालियाँ) सरकार की अपनी मजबूरियाँ हैं। उसके ऊपर अपने दबाव हैं समाज के, सरकारों के, समूह के; लेकिन हमारी निजी व्यवस्था हो तो कोई दबाव डाला नहीं जा सकता। वह हमारी निजी व्यवस्था होगी। उसके भीतर जो नग्न होना चाहते हैं हो सकते हैं, वह कोई पब्लिक, कोई सार्वजनिक जगह नहीं होगी।

यह होटल है, सार्वजनिक जगह नहीं है। और लोग भी आ सकते हैं। तो जहाँ और लोग भी आ सकते हैं, वहाँ और लोगों का ध्यान रखना भी जरूरी है। और फिर जीवन को बदलने की जो भी प्रक्रि-याएँ हैं; वे आम तौर से हमेशा ही समूह के विपरीत पड़ जाती हैं। नग्नता का ही सवाल नहीं है, नग्नता तो केवल प्रतीक है।

हम जो भी कर रहे हैं, वह समूह की धारणाओं के प्रतिकूल पड़ेगा ही। क्योंकि समूह जीता है अंधे की भाँति, बिना सोचे समझे। समूह जीता है परम्परा की लीक पर। जो परम्परा कहती है उसे ठीक मानता है, चाहे उसे ठीक मानने के कारण उसे कितना ही दुख झेलना पड़ता हो। उसे ख्याल भी नहीं होता कि मेरी मान्यताएँ ही मेरे दुख का कारण हैं। जो लोग भी जीवन में क्रान्ति करने को उत्सुक हैं, उन्हें समूह के धारणाओं के पार तो उठना ही पड़ता है। संन्यास का यही अर्थ है।

संन्यास का अर्थ समाज को छोड़ना नहीं है। क्योंकि समाज को तो छोड़ा जा नहीं सकता। संन्यास का अर्थ है, समाज की धारणाओं

के पार उठना। समाज जिसको ठीक समझता है, अगर वह अनुभव से ठीक न मालूम पड़े तो उस से भिन्न की खोज करना।

लेकिन फिर भी बुद्धिमान व्यक्ति को यह ध्यान रखना जरूरी है कि जिनके बीच हम जीते हैं, उनकी मान्यताएँ, उनकी धारणाएँ, हम अपने लिए तो छोड़ सकते हैं लेकिन उनकी धारणाओं को हम तोड़ें, वह उचित नहीं है। हम अपने लिए उनकी धारणाएँ तोड़ सकते हैं, हम धारणाओं से मुक्त हो सकते हैं, वह हमारी निजी स्वतन्त्रता है। लेकिन मैं आपसे नहीं कहूँगा कि आप सड़क पर जाकर नग्न खड़े हो जायें, क्योंकि सड़क आप की नहीं हैं और सड़क के आस-पास रहने वाले लोग हैं, उनको किसी भी बात से दुख हो, ऐसा कोई भी करना उचित नहीं है। लेकिन मैं सड़क के लोगों से भी ये कहना चाहता हूँ कि उनका भी यह हक नहीं है कि एकान्त निर्जन में, अपनी व्यवस्था के भीतर कोई नग्न खड़ा हो तो, उसमें वे अड़चन पैदा करें (तालियाँ)।

व्यक्ति की स्वतन्त्रता का मूल्य होना जरूरी है। लेकिन व्यक्ति की स्वतन्त्रता का कभी भी यह अर्थ नहीं है कि वह स्वतन्त्रता स्वछन्दता हो जाए। तो अगर मैंने कहा भी है कि सुबह के ध्यान में तुम नग्न हो सकते हो, तो वह तुम्हें कोई नग्न होने की छूट नहीं दे दी है कि तुम कहीं भी नग्न हो सकते हो। और अगर तुम कहीं भी नग्न होना चाहो तो उसका अर्थ ही यह हुआ कि तुम्हें ध्यान में रस नहीं है। तुम्हें नग्नता में रस है। वह रोग है। फिर तो वह रोग हो गया। उल्टा रोग हो गया।

कोई वस्त्रों के दिवाने हैं, तुम नग्नता के दिवाने हो गए, उसमें कुछ फर्क न रहा। नासमझी उल्टी हो गई। तुम शीर्षासन करके खड़े हो गये। कोई पागल है। वह कहता है वस्त्र उतारने ही नहीं हैं चाहे कुछ भी हो जाए।

मैंने एक ईसाई साध्वी के संबन्ध में पढ़ा है कि वह अपने स्नान-गृह में भी वस्त्र पहन कर ही स्नान करती थी। तो उसकी साथियों-संगियों ने कहा कि तू बिलकुल पागल है। स्नान-गृह में तो तेरे अतिरिक्त कोई होता नहीं। तो वहाँ कपड़े पहने स्नान करने का क्या

अर्थ है, स्नान का तो मजा ही चला गया। तो उस साध्वी ने कहा, जब से मैंने बाईबल में यह पढ़ा है कि परमात्मा तुम्हें सब जगह देख रहा है, तब से मैं बाथरूम में भी नग्न नहीं हो पाती।

यह एक पागलपन है। अगर परमात्मा सभी जगह देख रहा है तो कपड़ों के भीतर नहीं देख सकता ? उसे कपड़े क्या अड़चन देंगे जब दीवाल . चन नहीं दे रही। तो कपड़े क्या अड़चन देंगे और परमात्मा भी कोई पींपिंग टाम है कि हर किसी के बाथरूम में झांक रहा है ! तो रुग्ण है फिर तुम्हारा परमात्मा भी आदमी खुद रुग्ण हो तो वह अपने परमात्मा को भी रुग्ण कर लेता है। तुम्हारे रोग तुम्हारे देवी देवताओं पर हावी हो जाते हैं, क्योंकि तम्हारे ईश्वर की धारणा भी तुम्हीं तो निर्मित करते हो। अगर घोड़े ईश्वर क धारणा बनायें तो उसका चेहरा आदमी जैसा नहीं बनायेंगे—घोड़े जैसा ही बनायेंगे। अगर नीग्रो ईश्वर बनाते हैं तो उसे काला ही चित्रित करते हैं। उनके ईश्वर के ओंठ नीग्रो के ओंठ होते हैं। नीग्रो के बाल होते हैं। अगर चीनी ईश्वर को बनाते हैं तो उसके गाल की हड्डियाँ निकालते हैं। चपटी नाक रखते हैं। हम अपने ईश्वर को अपनी ही शक्ल में बनाते हैं।

तो हमारे जो रोग होते हैं, वह हमारे ईश्वर पर भी हावी हो जाते हैं। अब ये आदमी एक दूसरे के बाथरूम में झांक के जरूर देखना चाहते हैं। यह आदमी का रोग है। उनका ईश्वर भी वे ऐसा बना लेते हैं जो सब जगह झाँकता है। नग्न होने का मोह अगर पैदा हो जाए, तो वह भी रोग है, बीमारी है। ध्यान रहे आप का नग्न होना एक बात है और आप दूसरों को नग्न होकर दिखाएँ, यह दूसरी बात है। इन दोनों में फर्क है। आपका नग्न होना सहज हो सकता है। लेकिन आप नग्न होकर दूसरे को दिखाने में उत्सुक हों कि कोई देखे तो मनोविज्ञान में वे उसे कहते हैं (Exhibitionist)। वे प्रदर्शनवादी जो हैं, वे रोगी हैं। इसको थोड़ा समझें। मनोविज्ञान दो तरह की बीमारियाँ बताता है इस संबन्ध में। एक को वह कहता है (Voyeur)। दूसरा नग्न हो, ऐसा देखने में रस लेना। एक को कहता है (Exhibitionist) हम नग्न हों और दूसरे देखें, इसमें

रस लेना। यह दोनों बीमारियाँ हैं। ये दोनों सहज नहीं है।

पुरुष अक्सर (Voyeur) होते हैं। पुरुषों को जो बीमारी होती है वह झाँक कर स्त्रियों को देखने की होती है। स्त्रियाँ (Exhibitionist) होती है। उनकी जो बीमारी होती है वह यह होती है कि उनको कोई झाँक कर देखे। इसलिए स्त्रियाँ सारे उपाय करती हैं, ऐसे वस्त्र, पहनती हैं, ऐसे गहनें लगाती हैं, ऐसा सारा इन्तजाम करती हैं कि कोई देखें। और पुरुष सारा इन्तजाम करते हैं कि किसी भाँति देखें। मगर ये दोनों रोग हैं। और आप जान के हैरान होंगे कि दोनों रोग ही वस्त्रों के कारण पैदा हुए हैं।

अगर आप एक आदिवासी समाज में चले जायें, जहाँ पुरुष स्त्रियाँ नग्न हैं, वहाँ न (Exhibitionist) होता है और न वहाँ (Voyeur) होते हैं। वहाँ न कोई देखने में उत्सुक होता है, क्योंकि देखने का बचा क्या है जिसमें उत्सुकता हो। सभी नग्न है। देखने को है क्या? देखने की उत्सुकता तो जब कुछ छिपाया हो तब होती है। जब बातें खुली ही हों तो देखने का क्या है। तो आदिवासी समाज में जहाँ स्त्री पुरुष नग्न है—न तो कोई देखने में उत्सुक हैं, न कोई दिखाने में उत्सुक हैं। देखने दिखाने का रोग वस्त्रों के साथ पैदा हुआ है। यह रोग कितना बढ़ सकता है इसका हिसाब लगाना मुश्किल है।

कितने चित्र, कितनी कहानियाँ, कितनी फिल्में, कितनी पत्रिकाएँ सिर्फ इसलिए छपती और बिकती हैं कि उनमें नग्न चित्र छपते हैं। और सारी दुनियाँ की सरकार रुकावट लगाती है कि यह न हो, पर यह नहीं रुक पाता।

अंडर ग्राऊण्ड प्रेस हैं। भारी प्रचार चलता है, करोड़ों रुपयों का साहित्य नीचे बिकता है। कोई दुनिया की ताकत उस पर रोक नहीं लगा पाती बल्कि जितनी रोक लगायी जाती है, उतना सारा का सारा साहित्य ब्लैक मार्केट में बिकता है। पर यह बड़ी आश्चर्य की बात है कि आदमी क्यों किसी को नग्न देखने में इतना उत्सुक है। आप जान कर चकित होंगे कि आप उन हिस्सों को देखने में उत्सुक होते हैं जो ढंके हैं। जो उघड़े हैं उनको देखने में उत्सुक नहीं हैं।

जिन लोगों ने वस्त्रों की ईजाद की, शायद आप सोचते होंगे,

कि वे लोग काम वासना के बड़े विपरीत थे, इसलिए ईजाद की तो आप गलती में हैं। जिन्होंने वस्त्रों की ईजाद की उन्होंने आदमी को कामातुर बनाने का बड़ा भारी उपाय किया। क्योंकि जो अंग छिपा दिये गये हैं, उनमें बहुत रस पैदा हो गया। रुग्ण रस पैदा हो गया। इस रस का और कोई भी कारण नहीं है। शरीर सहज बात है, लेकिन उसको छिपा-छिपा के हमने निषेध कर कर के, बहुत रस पैदा कर लिया है। सारी दुनिया इस रस से ग्रसित हो गयी है।

आप दोनों बातें ख्याल में रखें। न तो दूसरे को नग्न देखने में उत्सुकता लेनी कोई समझदार व्यक्ति की बात है और न ही कोई उसे नग्न देखे, इसमें कोई रस लेना किसी समझदार व्यक्ति की बात है। ये दोनों रोग हैं। और ये दोनों रोग आप के वस्त्रों के साथ ही रख दिये जाने चाहिएँ, तो ही आपकी नग्नता में अध्यात्म प्रविष्ट होता है। तो ही आप की नग्नता अश्लील नहीं रह जाती; लेकिन यह तो आपकी बात है।

समाज इसके लिए राजी होगा, जरूरी नहीं है क्योंकि समाज तो उन्हीं रुग्ण बातों से भरा हुआ पड़ा है। अखबार राजी होंगे ये सवाल नहीं है। अखबार छापनेवाले पत्रकार, वे सब इन्हीं रुग्ण बातों से भरे पड़े हैं। उनकी भी तकलीफ वही है। उनकी भी अड़चन वही है। सरकार राजी हो जायेगी ऐसा नहीं क्योंकि सरकार के पदों पर जो लोग बैठे हैं, उन्हें कोई अध्यात्म की जरा सी झलक भी होती तो वे वहाँ नहीं होते। इसलिए वे कोई राजी हो जायेंगे, यह सवाल नहीं है। उनको राजी करने की कोई जरूरत भी नहीं है, कोई प्रयोजन भी नहीं है। उनकी तरफ ध्यान भी देने की जरूरत नहीं है, कि वे क्या कर रहे हैं। लेकिन इतना तो तय है कि वे बाधा और अड़चन डाल सकते हैं। लेकिन बाधा और अड़चन वे तभी डाल सकते हैं जब आप भी नग्नता को रोग की तरह पकड़ लें। नहीं तो वे भी बाधा और अड़चन नहीं डाल सकते।

यह हमारी निजी साधना की बात है और निजी स्थल पर है।

मैं तो पक्ष में नहीं हूँ इस बात के भी कि जैन मुनि सड़क पर नग्न निकलें। क्योंकि सड़क निकलने वाले की ही नहीं है—सड़क

पर जो लोग रहते हैं उनकी भी है। जिनको दिखाई पड़ता है, उनकी भी है, अगर वे नहीं देखना चाहते हैं तो उनकी आँखों पर हमला करना उचित नहीं है। वे ठीक हैं या गलत, ये सवाल नहीं है, लेकिन आँख मेरी है, और मैं आपको नग्न देखना नहीं चाहता हूँ तो आपको ऐसी जगह खड़े नहीं होना चाहिये, जहाँ से आप मुझे नग्न दिखाई पड़ें। और आप ऐसी जगह खड़े होते हैं तो उसका मतलब यह है कि आप को नग्न होने में रस कम है, कोई आपको नग्न देखे इसमें ज्यादा रस है। तब तो बात ही व्यर्थ हो गयी।

तब तो यह हुआ कि हम एक रोग को छोड़कर दूसरे रोग में पड़ गये। कुँए से बचे तो खाई में गिर गये। मैं कोई नग्नतावाद का प्रचारक नहीं हूँ। लेकिन नग्नता का एक उपयोग हो सकता है साधना में, उसमें जरूर मेरी सहमति है। लेकिन समाज का ध्यान रखना सदा ही जरूरी है। इसलिए नहीं कि आप समाज से डरते हैं। डर का कोई सवाल ही नहीं है।

लेकिन ये तो ऐसा ही हुआ, जैसे कोई बस हार्न बजा रही हो, और आप सामने ही खड़े रहे कि हम डरते हैं थोड़े जो रास्ते से हटें तो आप पागल हैं। हार्न बज रहा हो और कोई बस आ रही हो तो कोई डर की वजह से थोड़े ही हटता है, कि जो हट जाय उसको आप कहेंगे कि डरपोक है। क्योंकि जब बस आ रही थी, आप हटे क्यों? जब हार्न बज रहा था तब खड़े रहना तो कोई पागल होता तो खड़ा रहता। जीवन में झुकने की कोई जरूरत नहीं है; लेकिन जीवन में व्यर्थ अकड़े रहने की भी कोई जरूरत नहीं है। और दोनों के बीच मार्ग खोज लेना जरूरी है। इसलिए यहाँ जो एक ही उपाय था वह, यह कि अगर शिविर हो तो नग्नता पर रोक लगानी जरूरी थी, नहीं तो शिविर नहीं हो सकता था। दोनों में यही उचित पाया कि नग्नता पर प्रतिबन्ध लगा देना उचित होगा। थोड़ी बाधा तो पड़ेगी लेकिन इस बाधा से इतना नुकसान नहीं होगा, जितना शिविर के न होने से होता। और मैं किसी भी मामले में अन्धा नहीं हूँ। और किसी भी मामले, में मुझे किसी तरह का पागलपन नहीं है। जो उचित हो, और जो सुगम हो, और जिस भाँति अधिक लोगों को लाभ हो सके, सदा उस पर ही विचार कर लेना उचित है।

अनूठा आदर्श द्रौपदी

(प्रथम गीता ज्ञान यज्ञ, अह्मदाबाद में भगवान् श्री रजनीश द्वारा दिया गया प्रवचन का एक अंश)

एक सुबह एक मित्र आये। उन्होंने एक बहुत बढ़िया सवाल उठाया। मैं तो चला गया, शायद परसों मैंने कहीं कहा कि एक छोटे-से मजाक से महाभारत पैदा हुआ। एक छोटे-से व्यंग से द्रौपदी के, महाभारत पैदा हुआ। छोटा-सा व्यंग द्रौपदी का ही, दुर्योधन के मन में तीर की तरह चुभ गया और द्रौपदी नग्न की गयी, ऐसा मैंने कहा। मैं तो चला गया। उस मित्र के मन में बहुत तूफान आ गया होगा। हमारे मन भी तो बहुत छोटे-छोटे प्यालियों जसे हैं, जिनमें बहुत छोटे से हवा के झोंके से तूफान आ जाता है—
चाय की प्याली से ज्यादा नहीं है हमारा मन ! तूफान आ गया होगा।

मैं तो चला गया, तो वे मंच पर चढ़ आये होंगे। उन्होंने कहा, 'आ खोटी बात छे।' यह बिल्कुल झूठी बात है। द्रौपदी कभी नग्न नहीं की गयी।

द्रौपदी पूरी तरह नग्न की गयी, हुई नहीं, यह बात बिलकुल दूसरी बात है। करने वालों ने कोई कोर-कसर न छोड़ी। करने वालों ने सारी ताकत लगा दी, लेकिन फल आया नहीं। किये हुए के अनुकूल नहीं आया फल, यह दूसरी बात है। असल में जो द्रोपदी को नग्न करना चाहते थे, उन्होंने क्या रख छोड़ा था ? उनकी तरफ से कोई कोर-कसर न थी। लेकिन हम सभी कर्म करने वालों को, अज्ञात भी बीच में उतर आता है, इसका कभी कोई पता नहीं है। वह जो कृष्ण की कथा है, वह अज्ञात के उतरने की कथा है। अज्ञात के भी हाथ हैं, जो हमें दिखायी नहीं पड़ते।

हम ही नहीं हैं, इस पृथ्वी पर। मैं अकेला नहीं हूँ। मेरी अकेली आकांक्षा नहीं है, अनन्त आकांक्षाएं हैं। और अनन्त की भी आकांक्षाएं हैं। और उन सब के गणित पर अंततः तय होगा कि क्या हुआ। अकेला दुर्योधन ही नहीं है नग्न करने में, द्रौपदी का भी तो अस्तित्व है। अन्याय होगा यह कि दौपद्री भरी सभा में ज़बरदस्ती नग्न की जाय। उसके पास भी चेतना है और व्यक्ति है। उसके पास भी संकल्प है। साधारण स्त्री नहीं है द्रौपदी। सच तो यह है कि द्रौपदी के मुकाबले की स्त्री पूरे विश्व के इतिहास में दूसरी नहीं है।

कठिन लगेगी बात, क्योंकि याद आती है अन्य श्रेष्ठ महिलाओं की। और भी बहुत यादें हैं। फिर भी मैं कहता हूं, द्रौपदी का कोई मुकाबला नहीं। द्रौपदी अद्वितीय है। उसमें क्लियोपेट्रा का सौन्दर्य तो है ही, गार्गी का तर्क भी है। असल में पूरे महाभारत की धुरी द्रौपदी है। सारा युद्ध उसके आस-पास हुआ है।

लेकिन चूंकि कथाएं पुरुष लिखते हैं, इसलिए कथाओं में पुरुष-पात्र बहुत उभर कर दिखाई पड़ते हैं। असल में दुनिया की महाकथा स्त्री की धुरी के बिना नहीं चलती। सब महाकथाएं स्त्री की धुरी पर घटित होती हैं। वह बड़ी रामायण सीता की धुरी पर घटित हुई है। उसके केन्द्र में सीता हैं। राम और रावण 'ट्राएंगल' के दो छोर हैं। धुरी पर सीता हैं।

कौरव और पाण्डव, यह पूरा महाभारत और यह सारा युद्ध द्रौपदी की धुरी पर घटा है। उस युग की और सारे युगों की सुन्दरतम स्त्री है वह। नहीं, आश्चर्य नहीं है कि दुर्योधन ने भी उसे चाहा हो। उसका अस्तित्व उसके प्रति चाह पैदा करने वाला था। दुर्योधन ने भी उसे चाहा है और फिर वह चली गयी अर्जुन के हाथ।

यह भी बड़े मजे की बात है कि द्रौपदी को पांच भाइयों में बांटना पड़ा। कहानी बड़ी सरल है, उतनी सरल घटना नहीं हो सकती। कहानी तो इतनी ही सरल है कि अर्जुन ने आकर बाहर से कहा कि माँ, देखो हम क्या ले आये हैं? और माँ ने कहा, जो ले आये हो वह पांचों भाई बाँट लो। लेकिन इतनी सरल घटना हो नहीं सकती। क्योंकि जब बाद में मां को भी पता चला होगा कि यह

मामला वस्तु का नहीं स्त्री का है ! वह कैसे बांटी जा सकती है ? तो कौन-सी कठिनाई थी कि कुन्ती कह देती कि भूल हुई, मुझे क्या पता कि तुम पत्नी ले आये हो।

नहीं, लेकिन मैं जानता हूँ कि जो संघर्ष दुर्योधन और अर्जुन के बीच होता, वह संघर्ष पांच भाइयों के बीच भी हो सकता था। द्रौपदी ऐसी थी, वह पांच भाई भी कट-मर सकते थे उसके लिए। उसे बांट देना ही सुगमतम राजनीति थी। वह घर भी कट सकता था। वह महायुद्ध, जो पीछे कौरवों। पाण्डवों में हुआ, वह पाण्डवों-पाण्डवों में भी हो सकता था। इसलिए कहानी मेरे लिए उतनी सरल नहीं है। कहानी बहुत प्रतीकात्मक और गहरी है। वह यह खबर देती है कि स्त्री वह ऐसी थी कि पांच भाई लड़ भी जाते। इतनी गुणी थी, साधारण नहीं थी, असाधारण थी। उसको नग्न करना आसान बात न थी। आग से खेलना था। तो अकेला दुर्योधन नहीं है कि नग्न कर लेगा। द्रौपदी भी है। और ध्यान रहे, बहुत बातें हैं इसमें, जो ख्याल में ले लेने जैसी हैं।

जब तक कोई स्त्री स्वयं नग्न न होना चाहे, तब तक इस जगत में कोई पुरुष किसी स्त्री को नग्न नहीं कर सकता। कर पाता है, वस्त्र उतार भी ले तो भी नग्न नहीं कर सकता है। नग्न होना बड़ी घटना है— वस्त्र उतरने, निर्वस्त्र होने से नग्न होना बहुत भिन्न घटना है। निर्वस्त्र करना बहुत कठिन बात नहीं है, कोई भी कर सकता है, लेकिन नग्न करना बहुत दूसरी बात है। नग्न तो कोई स्त्री तभी होती है, जब वह किसी के प्रति खुलती है स्वयं, अन्यथा नहीं होती। वह ढंकी ही रह जाती है। उसके वस्त्र छीने जा सकते हैं, लेकिर वस्त्र छीनना स्त्री को नग्न करना नहीं है।

द्रौपदी जैसी स्त्री को नहीं पा सका दुर्योधन। उसके व्यंग तीखे पड़ गये उसके मन पर। बड़ा हारा हुआ है। हारा हुआ व्यक्ति— जैसे कि क्रोध में आयी हुई बिल्लियां खम्भे नोंचने लगती हैं—वैसा करने लगता है। और स्त्री के सामने जब भी पुरुष हारता है, इससे बड़ी हार पुरुष की कभी नहीं होती। पुरुष, पुरुष से लड़ ले, तो साधारण हार जीत होती है। लेकिन पुरुष जब स्त्री से हारता है

किसी क्षण में, तो इससे बड़ी कोई हार नहीं होती। दुर्योधन उन दिनों से नग्न करने का जितना आयोजन करके बैठा है वह सारा आयोजन भी हारे हुए पुरुष-मन का है।

उस तरफ जो स्त्री खड़ी है हँसने वाली, वह कोई साधारण स्त्री नहीं है। उसका भी अपना संकल्प है, अपना 'विल' है। उसकी भी अपनी सामर्थ्य है, उसकी भी अपनी श्रद्धा है। उसका भी अपना होना है। उसकी उस श्रद्धा में, वह जो कथा है, वह कथा तो काव्य है कि कृष्ण उसकी साड़ी को बढ़ाये चले जाते हैं। लेकिन मतलब सिर्फ इतना है कि जिसके पास अपना संकल्प है, उसे परमात्मा का सारा संकल्प तत्काल उपलब्ध हो जाता है। तो अगर परमात्मा के हाथ मिल जाते हैं, तो कोई आश्चर्य नहीं।

मैंने कहा, और मैं फिर से कहता हूँ कि द्रौपदी नग्न की गयी, लेकिन हुई नहीं। नग्न करना बहुत आसान है, उसका हो जाना और बहुत बात है। बीच में अज्ञात विधि आ गई, बीच में अज्ञात कारण आ गये। दुर्योधन ने जो चाहा, वह हुआ नहीं। कर्म का अधिकार था, फल का अधिकार नहीं था। यह द्रौपदी बहुत अनूठी है।

पूरा युद्ध हो गया है। भीष्म पड़े हैं शैय्या पर—बाणों की शैय्या पर। और कृष्ण कहते हैं, पाण्डवों को—कि पूछ लो धर्म का राज। और द्रौपदी हँसती है। उसकी हँसी पूरे महाभारत पर छायी है। वह हँसती है कि इनसे पूछते हैं, धर्म का रहस्य! जब मैं नग्न की जा रही थी, तब ये सिर झुकाये बैठे थे। उसका व्यंग बहुत गहरा है। वह इसलिए बहुत असाधारण है। काश! हिन्दुस्तान की स्त्रियों ने द्रौपदी को आदर्श बनाया होता, तो हिन्दुस्तान की स्त्री की शान ही और होती।

लेकिन नहीं, द्रौपदी खो गयी। उसका कोई पता नहीं। खो गयी। एक तो पांच पतियों की पत्नी है, इसलिए मन को पीड़ा होती है। लेकिन एक पति की पत्नी होना कितना मुश्किल है, इसका पता नहीं है। जो पाँच पतियों को निभा सकी है, वह साधारण स्त्री नहीं है। असाधारण है, 'सुपर ह्यूमन' है। द्रौपदी अति-मानवीय है,

लेकिन 'सुपर ह्यूमन' के अर्थों में। पूरे भारत के इतिहास में द्रौपदी को सिर्फ एक आदमी ने प्रशंसा दी है, और एक ऐसे आदमी ने जो बिलकुल अनपेक्षित है। पूरे भारत के इतिहास में डॉक्टर राम मनोहर लोहिया को छोड़ कर किसी आदमी ने द्रौपदी को सम्मान नहीं दिया है। यह हैरानी की बात है। मेरा तो लोहिया से प्रेम इस बात से हो गया कि पांच हजार साल के इतिहास में एक आदमी तो हुआ, जो द्रौपदी को सबके ऊपर रखने को तैयार है।

काम-वासना की अन्तर्यात्रा

(मेडम ब्लेवट्सकी की पुस्तक "समाधि के सप्तद्वार" पर आनन्द शिला शिविर में भगवान् श्री रजनीश द्वारा दी गई प्रवचन माला का एक अंश)

सारी वासनाओं के मूल में कामवासना है। वासना का रूप कोई भी हो, गहरे में खोजेंगे तो काम को ही पायेंगे। हिन्दुओं ने तो जगत के सृजन में ही काम को मूल माना है। सारी सृष्टि काम-वासना का ही फैलाव है। चाहे कोई धन चाहता हो, चाहे कोई पद चाहता हो; चाह मात्र अपने मौलिक रूप में कामना है, काम-वासना है। धन भी इसीलिये चाहा जाता है; पद भी इसीलिये चाहा जाता है। ये प्रकारान्तर से अलग-अलग द्वारों से एक ही वासना की तरफ ले जाते हैं।

तो जिसने काम-वासना पर विजय पा ली, उसने सभी वासनाओं पर विजय पा ली। काम-वासना क्या है?

अगर हम वैज्ञानिकों से पूछें, तो वे कहते हैं कि आदमी के जीवन में दो बातें बहुत आधारभूत हैं। एक तो जीवन बचना चाहता है, सरवाइव करना चाहता है। जीवन नष्ट नहीं होना चाहता है। जीवैषणा है कि मैं जीऊँ अकारण; इसका कोई कारण नहीं है। अगर कोई आप से पूछे, आप क्यों जीना चाहते हैं, तो आप कोई कारण नहीं बता सकेंगे। जीना चाहते हैं, यह अकारण है, बस ऐसा है। यह वैसे ही अकारण है जैसे सौ डिग्री पर पानी भाप बन जाता है, नब्बे डिग्री पर बनने में क्या अड़चन थी, या एक सौ दस डिग्री पर बनता तो क्या हर्ज था, अगर हम वैज्ञानिक से पूछें कि हाइड्रोजन आक्सीजन से मिलकर ही पानी क्यों बनता है, तो कोई उत्तर नहीं

है। बनता है; क्यों का कोई सवाल नहीं है। जो भी है, वह मिटना नहीं चाहता है। होने में ही बने रहने की कामना छिपी है।

इस कामना के दो रूप हो जाते हैं। आप होना चाहते हैं, रहना चाहते हैं, बचना चाहते हैं। अमरत्व की आकांक्षा है; न मिटें, ऐसा गहरे में छिपा है। इसलिए आदमी अपनी सब तरह से सुरक्षा करता है। लेकिन व्यक्ति की मृत्यु तो होगी। कितना ही उपाय हो, कितनी ही सुरक्षा हो, व्यक्ति मरेगा। क्योंकि व्यक्ति का जन्म होता है। लेकिन व्यक्ति के भीतर जो जीवन है, वह बच सकता है। आपकी लहर मरेगी, लेकिन आपके भीतर जो सागर है जीवन का वह बच सकता है। काम-वासना उसी जीवन के बचने की चेष्टा है। आप मिट जायेंगे, लेकिन आपके भीतर से जीवन निकल कर नये रूप ले लेगा। और उसके पहले कि आप मिटें, आपके भीतर जो जीवन की धारा छिपी है, वह नये शरीर खोज लेगी। आप खो जायेंगे, लेकिन आपके कुछ मौलिक अस्तित्व का हिस्सा, आपकी जीवन-धारा का कोई अंश आपके बच्चों में, बच्चों के बच्चों में यात्रा करता रहेगा।

काम-वासना जीवन को हर हालत में बचाने की आकाँक्षा का हिस्सा है। ऐसा मनुष्य में ही है, ऐसा नहीं; समस्त जीवन में है। वृक्ष भी अपने बीजों को सुरक्षित भूमि तक पहुंचाने की कोशिश करता है। अगर आप वृक्षों का अध्ययन करें, तो चकित हो जाएंगे। बड़े वृक्ष अपने बीजों को अपने से दूर पहुँचाने की कोशिश करते हैं। क्योंकि अगर बीज वृक्ष के नीचे ही गिर जायें, तो बड़े वृक्ष के नीचे उनके अंकुरित होने का उपाय नहीं है; उसकी छाया में वे मर जायेंगे। आपने सेमल का फूल देखा है ? आपने कभी सोचा न होगा कि बीज में सेमल की रुई क्यों चिपकी होती है ! उस वृक्ष की यह कोशिश है कि रुई के कारण हवा के झोंके में बीज दूर चला जाए। वह नीचे गिरेगा, तो नष्ट हो जाएगा। बीज को दूर पहुंचाने की कोशिश है—वह जो सेमल की रुई है। बीज खुद न उड़ सकेगा, रुई के सहारे उड़ जाएगा; दूर गिरेगा कहीं जाकर जहाँ अंकुरित हो सकेगा। और इसलिये एक वृक्ष करोड़ों बीज पैदा करता है कि एक व्यर्थ चला जायेगा, दो व्यर्थ चले जायेंगे, लेकिन करोड़ों बीजों में से

अगर एक भी अंकुरित हो गया तो जीवन पल्लवित होता रहेगा।

मैं एक मछली की जाति के सम्बन्ध में कभी पढ़ रहा था। उस मछली का जीवन बहुत थोड़ा है! लेकिन अपने जीवन में वह मछली कोई दस करोड़ अंडे देती है। दस करोड़ अंडे! और मछली के अंडों का जीवन बड़ा संकटपूर्ण है। दस करोड़ अंडों में से दो ही मछलियाँ पैदा हो पाती हैं। आदमी के भीतर भी इतने ही बीज पैदा होते हैं। एक पुरुष/ चार-पाँच अरब बच्चों को जन्म दे सकता है। एक संभोग में लाखों जीवाणु उपयोग में आते हैं, जो सभी जीवन बन सकते थे। लेकिन जीवन में आपके दस-पाँच बच्चे ज्यादा से ज्यादा पैदा हो पायेंगे।

जीवशास्त्री कहते हैं कि जीवन बचाने की आकाँक्षा के कारण कोई भी अवसर खोना नहीं चाहता है और इतनी विपुलता से अपने को फैलाता है कि अगर हजारों-लाखों मर कर भी व्यर्थ चले जायें, तो भी जीवन बचा रहे।

जीवन की बचने की यह आकांक्षा ही आपको काम-वासना जैसी मालूम पड़ती है। यह गहरी से गहरी है। इससे ही आप जन्मे हैं। और इससे ही जीवन आपसे जनमने के लिये आतुर भी है। काम-वासना के द्वार से जीवन में आपने प्रवेश किया है। और इसके पहले कि आप की देह व्यर्थ हो जाये, वह जीवन, जिसने आप में आवास बनाया था, नये आवास बनाने की कोशिश करता है।

इसलिये काम-वासना इतनी उद्दाम है। कितना ही उपाय करें, वह मन को पकड़ लेती है। वह आपसे बड़ी मालूम पड़ती है। आपके सब संकल्प, ब्रह्मचर्य के नियम, आपकी सब कसमें, सब प्रतिज्ञाएं पड़ी रह जाती हैं। और काम-वासना जब वेग पकड़ती है, तब आप पाते हैं कि आविष्ट हो गये और कोई बड़ी धारा आपको खींचे लिये जा रही है और आप उसमे बहे जा रहे हैं। इतनी मौलिक है काम-वासना।

और समस्त अध्यात्म की खोज इस काम-वासना के रूपान्तरण में है। क्योंकि यह जो जीवन की धारा है, अगर यह बाहर की तरफ बहती रहे तो नयी देह, नये शरीर उससे पैदा होते रहेंगे और यही

जीवन की धारा अगर अपने पर लौट आये तो आपका परम जीवन भी इसी जीवन-धारा से उपलब्ध हो जायेगा।

इस जीवन-धारा के दो उपयोग हैं। जैविक और आत्मिक। बायोलाजी के अर्थों में संतति और अध्यात्म के अर्थों में आत्मा। इससे शरीर भी पैदा हो सकते हैं अगर यह बाहर जाये और इससे आपकी आत्मा की किरण भी निखर के प्रगट हो सकती है अगर यह भीतर आये। यही धारा बाहर जाकर नये शरीर का जन्म बनती है और यही धारा भीतर जाकर आपका नया जन्म बनती है। जिस व्यक्ति की धारा उर्ध्वमुखी हो जाती है, अन्तर्मुखी हो जाती है, वह द्विज हो जाता है, उसका नया जन्म हो गया। एक जन्म तो मिलता है मां-बाप से, वह शरीर का जन्म है। एक और जन्म आपको स्वयं अपने को देना पड़ता है, वह आत्मा का जन्म है।

इसलिये समस्त धर्म काम-वासना के प्रति अति उत्सुक हैं। क्योंकि वही मूल शक्ति है, जिसका उपयोग किया जाना चाहिए। अगर आप संतति के निर्माण में ही लगे रहे, तो जिस शक्ति से आपका पुनर्जन्म हो सकता था और जिससे आप उसका अनुभव कर सकते थे जो अमृत है, उससे आप वंचित हो जाएंगे। तब अनेक-अनेक जन्मों में आप भटकते रह सकते हैं। जिस दिन यह धारा भीतर मुड़ जाएगी, उसी दिन देह में भटकना बन्द हो जाएगा। इसको हमने आवागमन से मुक्ति कहा है। और जब तक यह धारा बाहर ही चलती रहती है, तब तक आपको बाहर भटकना ही पड़ेगा।

अति कठिन है इस धारा को भीतर की तरफ मोड़ना। लेकिन यह असम्भव नहीं है। और कठिनाई भी नासमझी की वजह से है। समझ पूर्वक इस धारा को भीतर ले जाया जा सकता है। जीवन की सभी शक्तियाँ समझ पूर्वक काम में आ जाती हैं।

आज से पहले, इस सदी के पूर्व भी आकाश में बिजली चमकती थी; लेकिन वह आदमी के लिए सिर्फ भय का कारण थी। उससे डर पैदा होता था उसकी कड़क, उसकी चमक, कड़कड़ाहट छाती को डावांडोल कर जाती थी। आदमी सोचता था कि परमात्मा नाराज है और हम से कोई पाप, कोई भूल हुई है, इसलिए वह

बिजली कड़का के हमे डरा रहे हैं। बिजली इन्द्र का वज्र, इन्द्र का शस्त्र समझी जाती थी। फिर हम बिजली को समझ पाए कि वह क्या है। हमने उस शक्ति के राज को समझ लिया। आज उसी बिजली से कोई भय नहीं रहा। आज वही बिजली, बंधी हुई, घर-घर में प्रकाश दे रही है। आज वही बिजली जीवन की सहयोगी हो गई है।

ज्ञान विजय है; अज्ञान पराजय है। अज्ञान में शक्ति से डर लगता है, ज्ञान में वही शक्ति सहयोगी और सेवक हो जाती है।

जैसे आकाश में कौंधती बिजली कभी हमें डराती थी, वैसे ही कौंधती काम-वासना की शक्ति भी हमें डराती है, भयभीत करती है। क्योंकि हम अभी भी उस सम्बन्ध में अज्ञानी हैं, उस भीतर की विद्युत के सम्बन्ध में हम अभी भी अज्ञानी है।

ऐसा नहीं है कि उसके सूत्र नहीं जान लिये गए हैं। और ऐसा भी नहीं है कि लोगों ने उस भीतर की विद्युत को नहीं बाँध लिया। और ऐसा भी नहीं है कि उस विद्युत को बांध कर लोगों ने उस विद्युत से जगत में सेवा नहीं ले ली। जैसे बाहर की विद्युत को बांध कर हमने बाहर प्रकाश कर लिया, वैसे ही उस भीतर की विद्युत को बांध कर भी भीतर प्रकाश कर लिया गया है। लेकिन एक कठिनाई है।

बाहर का विज्ञान सामूहिक सम्पत्ति बन जाता है; एक बार जान लिया कि बिजली को कैसे पैदा किया जाए, जान लिया गया कि बिजली से कैसे उपयोग लिया जाए, तो फिर हर आदमी को खोजना नहीं पड़ता है। सूत्र जाहिर हो गए; उसकी शिक्षा दी जा सकती है। तो हर आदमी को एडिसन होने की जरूरत नहीं है। फिर एक साधारण-सा इंजिनियर भी सभी काम कर देता है। वह कोई एडिसन नहीं है; उसने कुछ खोजा नहीं, उसको कोई बड़ा ज्ञान भी नहीं है। लेकिन उसे जानकारी है फिर एक टेकनीशियन भी, जो इंजीनियर भी नहीं है, बिजली का काम कर देता है। उसे कुछ भी पता नहीं है, बिजली क्या है, पर उसे इतना पता है कि उसका कैसे उपयोग किया जाए।

लेकिन भीतर के विज्ञान के साथ एक कठिनाई है। नियम खोज लिये जाएँ, तो भी वे सार्वजनिक नहीं हो पाते हैं। हो नहीं सकते हैं; उनका स्वभाव ऐसा है। बुद्ध को पता है, कृष्ण को पता है, महावीर को पता है कि भीतर की यह जो विद्युत-धारा है—काम-ऊर्जा या सेक्स एनर्जी—वह कैसे बांधी जाए, कैसे इसका धारा बदली जाए, कैसे इसे बहाया जाए अपने अनुकूल, कैसे इससे भीतर प्रकाश पैदा किया जाए, कैसे भीतर की शक्ति में इसकी उपयोग किया जाए, कैसे भीतर के जीवन को पाने के लिए यह मार्ग बन जाए। सब इन्हें पता है। और वे कहते भी हैं। लेकिन फिर भी आप इंजीनियर या टेकनीशियन की तरह उसका उपयोग नहीं कर पाते हैं।

भीतर के विज्ञान के सम्बन्ध में एक मौलिक बात है कि फिर उसमें आपको स्वयं एडीसन बनना पड़ेगा, बुद्ध बनना पड़ेगा, क्राइस्ट बनना पड़ेगा। उसके पहले आप उसका उपयोग न कर सकेंगे। क्योंकि यह आपके भीतर की घटना है; मात्र सूचना और जानकारी से कुछ भी न होगा। अनुभव ही मार्ग बनेगा। संसार के सम्बन्ध में सूचना काफी है; अध्यात्म के सम्बन्ध में अनुभव जरूरी है। संसार के सम्बन्ध में जो भी हम जानते हैं, उसकी प्रयोगशालाएं बाहर हो सकती हैं। अध्यात्म के सम्बन्ध आप ही प्रयोगशाला हैं।

और भी जटिलता है। आप ही हैं प्रयोग करने वाले, आप ही हैं प्रयोगशाला, आप ही हैं उपकरण प्रयोग के, आप ही हैं शक्ति जिस पर प्रयोग होना है और आप ही है जो अंततः इस प्रयोग से रूपांतरित होंगे। वहां आपके अतिरिक्त और कोई भी नहीं है। इसलिये जटिलता बढ़ जाती है।

जैसे एक मूर्तिकार मूर्ति बनाता हो, तो पत्थर अलग होता है, जिस पर मूर्ति बनानी है; छेनी अलग होती है जिससे मूर्ति बनानी है, मूर्तिकार अलग होता है जिसको मूर्ति बनानी है और खरीददार अलग होता है जो मूर्ति खरीदेगा। लेकिन अध्यात्म की इस मूर्तिकला में आप ही सब कुछ हैं। आप ही है पत्थर जिसकी मूर्ति बननी है; आप ही है छेनी जिससे मूर्ति बनायी जानी है; आप ही हैं कलाकार

जिसको मूर्ति बनानी है और आप ही हैं, ग्राहक, खरीददार। वहाँ सब कुछ आप हैं। इसलिये जटिलता बढ़ जाती हैं, उलझन गहरी हो जाती है।

लेकिन क्योंकि मूर्तियां बन गई हैं, तो ही हमने बुद्धों को देखा और जाना है। और जो एक में हो सकता है वह सभी में हो सकता है। इस सूत्र को हम इस दृष्टि से समझने की कोशिश करें और खयाल रखें कि काम-ऊर्जा की समझ ही उसकी विजय है। लड़ने से नहीं जीतेंगे; जानने से जीतेंगे। लड़ते नासमझ हैं। समझदार लड़ते नहीं हैं, वे समझने की कोशिश करते हैं। जितने जान लेते हैं, वे उतने ही मालिक हो जाते हैं।

बेकन ने कहा है, ज्ञान शक्ति है। विज्ञान के लिए उसने यह कहा था। लेकिन अध्यात्म के लिए भी सत्य है। ज्ञान शक्ति है।

जिस शक्ति को आप जानते नहीं हैं, उससे आप परेशान होंगे। और अनजान में जो भी करेंगे, उससे और जटिलताएं बढ़ जायेंगी। ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है, जो काम-ऊर्जा के सम्बन्ध में कुछ-न-कुछ न करता हो। बिलकुल मुश्किल है। बुरे से बुरा आदमी भी अनैतिक आदमी भी, कामुक आदमी भी काम-वासना के सम्बन्ध में कुछ-न-कुछ करता रहता है; रोकने की कोशिश करता है; संभालने की कोशिश करता है। इस सारी कोशिश में वासना विकृत हो जाती है; सुधरती नहीं है, बदलती नहीं है, और कुरूप हो जाती है।

सारी दुनिया कुरूप काम-वासना से भरी है। हजारों रूपों में काम-वासना विकृत रोगों का रूप ले लेती है। ये नासमझों द्वारा किए गये काम हैं। यह ऐसा है, जैसे कोई बिजली के सम्बन्ध में कुछ न जानता हो और वह यदि बिजली के किसी उपकरण को सुधारने में लग जाए तो उससे आशा है कि और बिगाड़ देगा।

अच्छा हो, छुओ ही मत जब तक समझ न लो। ठीक समझ कर ही भीतर चलना; अन्यथा जिस शक्ति से आत्मा का जन्म हो सकता था, उससे आतमघात भी हो सकता है। और बहुत लोग आत्मघाती हो जाते हैं, अगर हम लोगों की मानसिक विकृतियों का अध्ययन करें, तो हम पायेंगे कि उनके मूल में काम-वासना के साथ किया

गया अज्ञानपूर्ण कार्य। फ्रायड के गहरे अध्ययन ने यह बात जाहिर कर दी है कि आदमी के मन की बीमारियों में सौ में निन्नानबे के मामले में काम वासना की विकृति है। उस ऊर्जा के साथ कभी भूल हो जाती है और तब सब नष्ट हो जाता है। हजार तरह के पागल-पन हैं, हजार तरह के मानसिक रोग हैं, हजार तरह की मानसिक चिन्ताएँ हैं, उनके रूप कुछ भी हों, उनके गहरे में काम-वासना होगी। और काम-वासना इसलिए उनके गहरे में होती है कि आपने कुछ करने कि कोशिश की है उस यंत्र के सम्बन्ध में जिसका आपको कोई भी पता नहीं है।

और काम-वासना जीवन का आधार है; इसलिए बहुत गहरे होने चाहिए उसकी जानकारी, उसकी समझ, उसका अनुभव। तीन बातें स्मरण रखें, फिर हम सूत्र में प्रवेश करें।

पहली बात, स्वाभाविक काम-वासना को अस्वाभाविक मत होने देना। जो स्वाभाविक है, उसे स्वीकार करना। अस्वीकार करने से वह अस्वाभाविक हो जाएगी और उसे अस्वाभाविक करने से उसके विकृत, परवर्टेड रूप पैदा हो जाएंगे स्वाभाविक काम-वासना को बदलना आसान है; अस्वाभाविक को बदलना बहुत कठिन है। समझें इसे ऐसा कि एक पुरुष एक स्त्री में आकर्षित होता है; यह स्वाभाविक है। इस काम-वासना को बदलना आसान है। लेकिन सारी दुनिया में होमो-सेक्सुएलिटी है कि एक पुरुष एक पुरुष में उत्सुक हो जाता है, या एक स्त्री एक स्त्री में उत्सुक हो जाती है; इस काम-वासना को बदलना कठिन है। यह विकृत है, अस्वाभाविक है; इसकी बदलाहट बहुत मुश्किल है। हेटरोसेक्सुएलिटी, इतरलिंग कामुकता को बदलना आसान है, क्योंकि वह स्वाभाविक है, प्राकृतिक है। होमोसेक्सुएलिटी, समलिंग कामुकता को बदलना अति कठिन है, क्योंकि हम अप्राकृतिक हैं।

इस तरह के हजार-हजार रूप आदमी को पकड़े हुए हैं। एक आदमी जिसे प्रेम करता है, वह उसको पास लेना चाहता है, निकट लेना चाहता है, यह स्वाभाविक है। इस स्वाभाविक वासना को बदलना आसान है लेकिन एक आदमी किसी को प्रेम नहीं करता है,

किसी को निकट नहीं लेना चाहता है, लेकिन भीड़-भीड़क्के में अगर स्त्री मिल जाये तो धक्का मार के नदारद हो जाता है, यह अस्वाभाविक है। इस आदमी की काम-वासना को बदलना बहुत मुश्किल है। यह विकृत है, यह स्वाभाविक नहीं है। जिससे प्रेम है, उसे निकट लेना स्वाभाविक है। लेकिन, जिससे प्रेम नहीं है, उसको भीड़ में धक्का मार कर चले जाना रोग है। इसकी बदलाहट जरा मुश्किल पड़ेगी। और इसकी बदलाहट के लिये अड़चनें हो जाएंगी।

लेकिन एक आदमी क्यों किसी स्त्री को भीड़ में धक्का मारने में उत्सुक हो जाता है? शायद किसी स्त्री को पास लेने का जो मन था, उसे उसने 'दबा लिया है, रोक लिया है। वही दबा हुआ झरना कहीं से भी फूट कर बह रहा है। तो पहली बात तो यह खयाल रखना कि स्वाभाविक काम-बासना ठीक है। और उससे आगे की यात्रा सीधी है। अस्वाभाविक काम-वासना और खतरनाक है, उससे सावधान रहना, बचना।

दूसरी बात ख्याल रखना कि स्वाभाविक काम-वासना को सिर्फ भोगना ही नहीं, भोग के साथ-साथ उस पर भी ध्यान करना। क्योंकि वासना में दंश नहीं है, मूर्च्छित वासना में दंश है। अगर आपको लगता है कि मन को काम पकड़ता है, तो भोग में उतरना, लेकिन होश पूर्वक उतरना। ध्यान रखना क्या हो रहा है, ध्यान रखना क्या मिल रहा है, ध्यान रखना कि किस सुख की, किस आनंद की, किस शांति की उपलब्धि हो रही है। ध्यानपूर्वक भोग में उतरना, ताकि भोग के गहरे रहस्य आपके ध्यान में समाविष्ट हो जाएं। वही आपकी समझ बनेगी।

और तीसरी बात। इस बात की खोज जारी रखना कि जो सुख या शाँति की झलक मिलती है, वह वस्तुतः काम-वासना के कारण मिलती है या कारण कोई और है। स्वाभाविक बासना हो, ध्यानपूर्बक वासना हो, तो यह तीसरी बात भी समझने में आपको ज्यादा देर नहीं लगेगी, और पता चल जाएगा कि काम-बासना के कारण सुख और आनन्द की प्रतीति नहीं होती है। इसको जो जानते हैं उन्होंने काकतालीय न्याय कहा है। काकतालीम न्याय का मतलब होता है कि

आप एक वृक्ष के नीचे बैठे हैं और एक कौए ने आवाज दी और कौए की आवाज के साथ संयोग की बात कि वृक्ष से एक फल टपक कर आपके पास गिर गया, तो आपने समझा कि कौए की आवाज के कारण फल गिरा। यह काकतालीय न्याय है। कोई कौए की आवाज से फल नहीं गिरा। कौए की आवाज से फल के गिरने का कोई अनिवार्य सम्बन्ध नहीं है। लेकिन जटिलता और बढ़ जाएगी कि जब आप भी कौए की आवाज सुनें तभी अगर फल गिरे। तब बहुत मुश्किल हो जाएगी।

आपने सुनी होगी उस बुढ़िया औरत की कहानी, जिसके मुर्गे के बाँग देने से रोज सुबह सूरज ऊगता था। एक दिन की बात हो तो संयोग भी मान लें। वर्षों का अनुभव है कि जब भी मुर्गा बांग देता है, तब सूरज ऊगता है। स्वभावतः उस बूढ़ी औरत ने मान रखा था कि मेरा मुर्गा जिस दिन बांग न देगा, उस दिन सूरज न निकलेगा। गांव से उसका झगड़ा हो गया तो उसने कहा कि अच्छा ठहर, तुम्हें मैं मजा दिखाती हूं; मैं अपने मुर्गे को लेकर दूसरे गांव चली जाती हूँ, तब तुम्हें पता चलेगा, जब अंधेरे में भटकोगे और तड़पोगे और जब सूरज नहीं ऊगेगा। वह बूढ़ी औरत अपने मुर्गे को लेकर दूसरे गांव में चली गई। और जब मुर्गे ने दूसरे गांव में बांग दी और सूरज ऊगा, तो उसने कहा, अब समझेंगे नासमझ लोग, उस गांव की क्या हालत हो रही होगी ? सूरज तो यहाँ ऊग गया। जहां मेरा मुर्गा, वहां सूरज को ऊगना होगा। यह काकतालीय न्याय है।

काम-वासना के सम्बन्ध में यही हो रहा है। काम-वासना से जो सुख मिलता है, उससे इतना ही सम्बन्ध है जितना मुर्गे की बांग में और सूरज के ऊगने में है। काम-वासना से सुख नहीं मिलता है; न मुर्गे की आवाज से सूरज ऊगता है। लेकिन किसी और गहरे कारण से सुख की प्रतीति होती है। उसका आपको पता हो जाए तो फिर यह भ्रान्ति टूट जाएगी कि मुर्गे की आवाज से सूरज ऊग रहा है। और फिर सूरज उगाने के लिए मुर्गे की आवाज पर निर्भर रहने की जरूरत नहीं है। फिर सूरज आपके मुर्गे की आवाज के बिना भी ऊग सकता है।

काम की तृप्ति में जो सुख मिलता है, उसका मौलिक कारण काम नहीं है, उसका मौलिक कारण ध्यान है, समाधि है। काम-वासना के शिखर पर एक क्षण को मन शून्य हो जाता है और इस शून्य होने के कारण आपको सुख झलक मिलती है। शून्य क्यों हो जाता है ? आप काम-वासना में इतने तल्लीन हो जाते हैं, काम-कृत्य में और क्रीड़ा में इतने तल्लीन हो जाते हैं जितने आप किसी में तल्लीन नहीं होते, उस तल्लीनता के कारण मन शान्त हो जाता है और मन के शान्त होने के कारण सुख की झलक मिल जाती है।

अगर आप किसी और काम में भी इतने ही तल्लीन हो जाएं तो आप पर काम-वासना की पकड़ छूट जाएगी। इसलिए जो लोग स्रष्टा हैं, जो कुछ सृजन कर सकते हैं, उनको काम वासनाएं ज्यादा नहीं पकड़ती हैं। इसलिए स्रष्टा पुरुषों के साथ स्त्रियां कभी प्रसन्न नहीं होतीं। सुकरात है, तो उनकी स्त्री सुखरात से प्रसन्न नहीं होती है। हो नहीं सकती। क्योंकि सुखरात इतना लीन हो जाता है दर्शन के चिन्तन में कि काम-वासना उसकी क्षीण हो गई है। उसी लीनता से उसे वह सुख मिल जाता है, जो काम-वासना से उसे मिलता है।

एक चित्रकार अपने चित्र बनाने में अगर लीन हो जाए, तो उसके मन को काम-वासना नहीं पकड़ती। एक मूर्तिकार अपनी मूर्ति को बनाने में लीन हो जाए, तो उसकी काम-वासना क्षीण होने का कारण यह नहीं है कि वह कोई ब्रह्मचर्य साध रहा है। इसका कारण यह है कि उसका सूरज पुराने मुर्गे की बांग के बिना ऊगने लगा। वह जो क्षण आता था मौन का काम के द्वारा, अब वह मूर्ति के ही निर्माण करने में आने लगा। अगर आप अपने गीत में डूब जाएँ, अपने नृत्य में डूब जाएं, अपने ध्यान में डूब जाएं, तो आपको पता हो जाएगा कि सूरज के ऊगने का मुर्गे की बांग से कोई सम्बन्ध नहीं है। यह सूरज और तरह से भी ऊग सकता है।

ये तीन बातें खयाल रखें, स्वाभाविक हो काम, ध्यानपूर्वक हो काम और सतत यह खोज बनी रहे कि जो गहरे में शांति की प्रतीति होती है, वह काम-वासना के कारण होती है या कारण कोई और है जिसका हमें पता नहीं है। जिस दिन आपको वह कारण साफ

हो जायगा, उस दिन उस कारण का सीधा ही उपयोग किया जा सकता है। ध्यान, समाधि, योग—सब उसी कारण पर खड़े हैं।

योग ने उस कारण को खोज लिया है सीधा। इसलिये लोग कहते हैं कि जब तक आप ब्रह्मचर्य को उपलब्ध न होंगे, तब तक आप योगी न बन सकेंगे। और मैं कहता हूँ कि जब तक आप योग को उपलब्ध न होंगे, ब्रह्मचर्य उपलब्ध नहीं होगा। इसलिये मैं ब्रह्मचर्य को योग की शर्त नहीं बनाता। ब्रह्मचर्य को मैं योग का परिणाम कहता हूँ। इसलिये मैं आपसे नहीं कहता हूँ कि ध्यान अगर आपको करना है तो पहले ब्रह्मचर्य साधें। जो यह कहते हैं, उन्हें पता नहीं है कि वे क्या कह रहे हैं। मैं आपसे कहता हूँ, आप ध्यान साधें, ब्रह्मचर्य की चिन्ता मत करें।

जिस दिन ध्यान में आपको काम-वासना से मिले सुख से गहरे सुख का अनुभव होने लगेगा, उस दिन दुनिया की कोई भी ताकत आपको काम-वासना में ले जाने की सामर्थ्य नहीं रखेगी। दुनिया में महत्तर सुख के लिए छोटे आनन्द छोड़े जा सकते हैं। लेकिन बड़े आनन्द का कोई अनुभव होना चाहिये।

आपके हाथ में कंकड़ पत्थर हैं, मैं आपसे कहूं कि छोड़ दें, तो आप कहेंगे कि कुछ तो हैं हाथ में, कंकड़-पत्थर ही सही हाथ भरा है तो ही अच्छा लगता है, खाली हाथ में बेचैनी होगी। आप छोड़ने को राजी न होंगे। और कंकड़-पत्थर रंगीन हैं और हीरों का खयाल देते हैं। लेकिन अगर मैं एक हीरा आप के हाथ में रख दूं तो आपको पता भी नहीं चलेगा कब आपके हाथ से कंकड़-पत्थर छूट गये और कब आपने हीरे पर मुट्ठी बांध ली।

ध्यान आपको उस हीरे की अपनी शुद्धता में दे देता है, काम-वासना में मुश्किल से जिसकी झलक और बड़ी अशुद्ध झलक कभी कभी मिलती है। वह शुद्धतम हीरा जब हाथ में हो जाता है, अशुद्धि की खोज बंद हो जाती है।

गीतामृत

संकलन : मा योग क्रांति

[दिनांक ३-१२-७२ को पूनामें गीता के आठवें अध्याय पर भगवान् श्री का प्रवचन

यत्र काले त्वनावृत्ति मावृत्तिं चैव योगिनः ।
प्रयाता यान्ति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ ॥ २३ ॥
अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम् ।
तत्र प्रयता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥ २४ ॥

अर्थ : और हे अर्जुन, जिस काल में शरीर त्याग कर गये हुए योगीजन पीछे न आने वाली गति को और पीछे आने वाली गति को भी प्राप्त होते उस काल को अर्थात् मार्ग को कहूँगा। उन दो प्रकार के मार्गों से जिस मार्ग में—
ज्योतिर्मय अग्नि अभिमानी देवता है और दिन का अभिमानी देवता है तथा शुक्ल पक्ष का अभिमानी देवता है और उत्तरायण के छः महीनों का अभिमानी देवता है उस मार्ग में मर कर गये हुए ब्रह्मवेता योगीजन उपरोक्त देवताओं द्वारा क्रम से ले गये हुए ब्रह्म को प्राप्त होते हैं।

मृत्यु—जीवन की कला

कोई ऐसे भी जी सकता है जैसे मरा हुआ ही रहा हो, और कोई ऐसे भी मर सकता है कि उसकी मृत्यु को हम जीवन्त कहें। जीवन भी मृतवत् हो सकता है, और मृत्यु भी अति जीवन्त। जिस भांति हम जीते हैं उसे जीवन नाम मात्र को ही कहा जा सकता है। न तो जीवन का हमें कोई पता है, न जीवन के रहस्य का द्वार खुलता है, न जीवन के आनन्द की बरखा होती है, न हम यही जान पाते हैं कि

हम क्यों जी रहे हैं ? किसलिए जी रहे हैं ?

हमारा होना करीब-करीब न होने के बराबर होता है। कहना उचित नहीं कि हम जीते हैं, यही कहना काफी है कि हम किसी भांति बने रहते हैं। किसी भाँति अस्तित्व को ढो लेते हैं। जीवित रहते हुए भी मुर्दे की भाँति—लेकिन ऐसा भी होता है कि मरते क्षण में भी कोई इतना जीवन्त होता है कि उसकी मृत्यु को भी हम मृत्यु नहीं कहते। बुद्ध की मृत्यु को हम मृत्यु नहीं कह सकते हैं, और हमारे जीवन को हम जीवन नहीं कह पाते हैं। कृष्ण की मृत्यु को मृत्यु कहना भूल होगी। उनकी मृत्यु को हम मुक्ति कहते हैं, उनकी मृत्यु को निर्वाण कहते हैं। उनकी मृत्यु को हम जीवन से और महा-जीवन में प्रवेश कहते हैं।

उनकी मृत्यु के क्षण में कौन सी क्रांति घटित होती है जो हमारे जीवन के क्षण में भी घटित नहीं हो पाती। किस मार्ग से वे मरते हैं कि परम जीवन को पाते हैं और किस मार्ग से हम जीते हैं कि जीवित रहते भी हमें कोई जीवन की सुगन्ध का पता नहीं पड़ता।

जिसे हम अपना शरीर कहें वह हमारे लिए कब्र से ज्यादा नहीं है—एक चलती फिरती कब्र और यह लम्बा विस्तार जन्म से लेकर मृत्यु तक, बस आहिस्ता-आहिस्ता मरते जाने का ही काम करता है। ऐसे हम गुजरते हैं रोज-रोज और मौत के करीब पहुँचते हैं। हमारी सारी यात्रा मरघट पर पूरी हो जाती है। लेकिन बुद्ध भी मरते हैं, कृष्ण भी, क्राइस्ट भी और मुहम्मद भी और उनकी मृत्यु के लिए हमें दूसरा शब्द खोजना पड़ता है। उनके जीवन के लिए भी हमें दूसरा शब्द खोजना पड़ता है। वे कुछ और ढंग से जीते हैं और वे कुछ और ढंग से मरते हैं। जीने का सब कुछ निर्भर है जीने के ढंग पर और मरने का भी सब कुछ निर्भर है मरने के ढग पर। हमें जीने का ढंग भी नहीं आता। बुद्ध जैसे व्यक्ति को मरने का ढंग भी आता है।

कृष्ण अर्जुन से उस क्षण, उस मार्ग की, मृत्यु की उस कला की बात इन सूत्रों में करेंगे जिस को जानने वाला, उस मार्ग को पहचानने वाला, मर कर मरता नहीं, अमृत को उपलब्ध हो जाता है। कृष्ण ने कहा है—और हे अर्जुन जिस काल में शरीर त्यागकर गये हुए

योगीजन पीछे न आने वाली गति को और पीछे आने वाली गति को भी प्राप्त होते हैं, उस काल को, उस मार्ग को मैं तुमसे कहूँगा।

जिस काल में, जिस क्षरण में—बड़ा मूल्य है क्षरण का, बड़ा मूल्य है काल का। किस क्षण में कोई व्यक्ति मृत्यु को उपलब्ध होता है—निश्चित ही क्षरण का अर्थ बाहर की घड़ी में घूमते हुए कांटे से जो नापा जाता है, उस क्षरण से नहीं है लेकिन भीतर भी एक घड़ी है और भीतर भी एक घड़ी है और भीतर भी क्षरणों का एक हिसाब है। एक तो बाहर हमने नापने की यांत्रिक व्यवस्था की है समय को, वह बाहर के कामों लिए जरूरी है, भीतर के कामों के लिए नहीं। भीतर एक और भी माप है और उस माप में, जिस क्षरण में व्यक्ति की मृत्यु होती है, भीतरी माप के जिस क्षण में, भीतरी घड़ी के जिस क्षरण में बहुत कुछ निर्भर होता है।

क्योंकि इस जगत् में आकस्मिक कुछ भी नहीं है। मृत्यु भी आकस्मिक नहीं है। मृत्यु भी बहुत सुव्यवस्थित है और मृत्यु भी बहुत कारणों से सुनिश्चित है। और हर आदमी हर कभी नहीं मरता, हर आदमी अपनी मत्यु चुनता है। धेट इज ए चोईस, जिसे हम जिन्दगी भर निर्मित करते हैं। मृत्यु को देख कर कहा जा सकता है कि व्यक्ति कैसे जिया। भीतर मृत्यु का क्षरण निर्णायक है। यदि भीतर की घड़ी, भीतर का समय विचार से भरा हो, वासना से भरा हो, कामना से भरा हो तो व्यक्ति मर कर वापस लौट आता है, लेकिन भीतर का समय यदि बिल्कुल शुद्ध हो, सिर्फ समय हो, कोई विचार नहीं, कोई कामना नहीं, कोई तृष्णा का सूत्र नहीं, शुद्ध क्षण हो समय का, जैसे निश्छल पानी हो, जरा भी कुछ और अशुद्धि उसमें न हो, सिर्फ समय हो, तो उस क्षरण में मरा हुआ व्यक्ति संसार में लौटकर नहीं आता।

शुद्ध समय में ठहर जाना ध्यान है

इस सम्बन्ध में कहना चाहूँगा—महावीर ने ध्यान के लिए जो नाम दिया है वह है सामायिक। यह शब्द बहुत अद्भुत है। यह समय से बना हुआ शब्द है। महावीर ने कहा है, ध्यान मैं उसी को कहता हूँ जब तुम्हारे भीतर का समय बिल्कुल शुद्ध हो। इसलिए उन्होंने ध्यान का उपयोग ही नहीं किया, ध्यान की जगह उन्होंने सामायिक

शब्द का उपयोग किया। शुद्ध समय में ठहर जाना ध्यान है। हमारा समय---भीतर जो हमारा समय है वह सदा ही वासना से भरा है थोड़ा भीतर का स्मरण करें तो ख्याल में आ जायेगा।

आपने अपने भीतर वर्तमान के क्षण को कभी भी नहीं जाना होगा। भीतर या तो आप अतीत को जानते हैं, बीत गये को, जिसकी स्मृति आपका पीछा करती है छाया की भाँति। जो हो चुका, उसकी जुगाली करते रहते हैं—जैसे जानवर जुगाली करते हैं, भैंस रख लेती है भोजन बहुत सा अपने पेट में और फिर उसे निकाल कर चबाती रहती है। जो बीत गया उसकी जुगाली चलती है मन के भीतर सोचते रहते हैं बार-बार उसको, जो हो चुका। जो हो चुका उसे सोचना ना समझी है। उस अपने वर्तमान क्षण को व्यर्थ ही आप नष्ट किये दे रहे हैं। जो जा चुका वह जा चुका, अब वह कहीं भी नहीं है, लेकिन आप की स्मृति में है। और आपकी स्मृति जुगाली करती है और वर्तमान में जो क्षण हैं, अभी समय जो है भीतर, उसे ढांक देती है। वह जो प्रजेन्ट मूवमेंट है, अभी इसी समय जो मौजूद क्षण है उसे अतीत ढांक लेता है। और जब कोई वर्तमान का क्षण अतीत से ढँक जाता है तो नष्ट हो जाता है। आप उससे अपरिचित ही गुजर जाते हैं।

या तो यह होता है, या फिर यह होता है कि वर्तमान का क्षण भविष्य की वासना से आच्छादित होता है। सोचते हैं उसके सम्बन्ध में, जो अभी नहीं है, होगा। आने वाला कल, भविष्य, क्या करना है, क्या नहीं करना है, क्या पाना है, क्या नहीं पाना है, कौन सी चीज लेनी है, कौन सी मंजिल बनानी है। या तो अतीत डुबा देता है क्षण को, वर्तमान को, या भविष्य डुबा देता है। दोनों हालत में भीतर का समय खो जाता है। दोनों हालत में वह काल क्षण खो जाता है जो कि वस्तुतः था। और वे चीजें आच्छादित हो जाती हैं जो नहीं हैं।

बीता हुआ कल भी नहीं है, आने वाला कल भी नहीं है। जो नहीं है वह उसे घेर लेता है जो है। यही मरे हुए जिन्दा आदमी का लक्षण है। इसीलिए हम जीते हैं बुझे-बुझे, मरे-मरे क्योंकि जो नहीं है वह हमारे ऊपर भारी है और जो है उसका कहीं पता भी

चलता।

क्या कभी आपने ऐसा टाईम, मूवमेंट, ऐसा काल क्षण जाना है जब अतीत भी न हो भविष्य भी न हो, और आप अभी हों, यहीं, अभी और यहीं, जस्ट हियर एण्ड नाउ। उस क्षण में यदि मृत्यु हो जाय तो लौट कर आना नहीं होता। लेकिन, जो उस क्षण में जिया ही नहीं, वह मरेगा कैसे ? जिसने जीवन में कभी उस क्षण को जाना ही नहीं, वह मरते वक्त नहीं जान सकेगा अचानक। अचानक उसका अवतरण नहीं होता। जिसका जीवन भर भरा हुआ रहा है कचरे से, मरते क्षण में वह सारा कचरा इकट्ठा होकर उसके चित्त को घेर लेता है।

ध्यान रहे, जीते जी तो कुछ अतीत याद आता है और कुछ भविष्य। मरते क्षण पूरा अतीत और पूरी भविष्य की कल्पनाएं इकट्ठी खड़ी हो जाती हैं। जिन लोगों को कभी पानी में डूबने का ख्याल हो, कि ऐसी घड़ी आ गयी कि मरने के करीब पहुंच गये तो शायद उन्हें पता हो। बहुत से डूबने वाले लोगों ने, जो बच गये, वक्तव्य दिये हैं और वह वक्तव्य यह है कि डूबते क्षण पानी में जब लगता है कि मौत आ गयी तो एक क्षण में सारा जीवन फिल्म की भांति आपके सामने से गुजर जाता है। एक क्षण में जैसे पूरी की पूरी जीवन की फिल्म एक बारगी आँख के सामने गुजर जाती है।

मरते वक्त सभी को ऐसा होता है। सारा अतीत आँख के सामने घिर जाता है और सारे भविष्य के भय, वासनाएँ। स्वप्न, वे भी सब इकट्ठे हो जाते हैं। मृत्यु का क्षण बड़ी भीड़ का क्षण है। टू मच क्राउडेड। इसलिए मृत्यु में आपको अपना तो पता ही नहीं चलता, भीड़ इतनी ज्यादा होती है कि पता लगाना ही मुश्किल होता है कि मैं कौन हूँ। जो मर रहा है, उसका तो पता ही नहीं चलता। लेकिन पीछे और आगे, हम डोलते रहते हैं।

मन है अतीत और भविष्य का जोड़

सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन की शादी को तीस वर्ष हो गये हैं और उसकी पत्नी ने एक दिन सुबह उठ कर कहा कि मुल्ला याद है, आज तीस वर्ष पूरे होते हैं। आज हमारी बिवाह की वर्षगांठ है। कैसे मनायें, क्या इरादा है तुम्हारा। क्या अच्छा न हो, जो मुर्गा छः

महीने से हम पाल रहे हैं, आज उसे काट लिया जाय। नसरुद्दीन ने कहा, तीस साल पहले घटी हुई दुर्घटना के लिए मुर्गे को दण्ड देना कहाँ तक उचित है। फिर मुर्गे का उसमें कोई हाथ भी नहीं। लेकिन तीस वर्ष क्या, तीस जन्म पहले घटी हुई घटना और दुर्घटना भी हमें घेरे रहती है। हम उसी के इर्द गिर्द घूमते रहते हैं। और जितना हम पीछे घूमते रहते हैं उतना ही हम आगे की योजनाओं में डूबे रहते हैं। जितना होगा अनुपात अतीत का, उतना ही अनुपात होता है सदा भविष्य का।

जितनी जड़ें आदमी की अतीत स्मृति में होती हैं उतनी ही शाखाएँ, उसी अनुपात में, ठीक उसी अनुपात में भविष्य में फैल जाती हैं। और बीच का जो क्षण है बहुत छोटा, अति अल्प, आणविक वह खो जाता है इस बीच। जिस काल क्षण की कृष्ण बात कर रहे हैं, उस काल क्षण को ठीक से समझ लें। उस समय न अतीत हो, न भविष्य, रह जाय शुद्ध वर्तमान, परिपूर्ण निश्छल परिपूर्ण निर्दोश, इनोसेंट, अनबैलेंस, निर्बाझ, निर्भार, तो उस क्षण में जो मृत्यु होती है उसका रूप मृत्यु का नहीं, परम जीवन के अनुभव का है। वह मृत्यु मुक्ति बन जाती है।

मृत्यु हम तब तक कहते हैं अंत को जब तक वापस लौटना जारी रहता है। मृत्यु उस क्षण मुक्ति बन जाती है जिस क्षण वापस लौटने का उपाय नहीं रह जाता। वापस लौटता है आदमी मन से। मन ही धागा है जिससे हम वापस लौटते हैं। और मन है अतीत और भविष्य का जोड़। अतीत धन भविष्य बराबर मन। वर्तमान का क्षण मन का हिस्सा नहीं है—नाट ए पार्ट आफ द माइण्ड। वर्तमान मन का हिस्सा नहीं है इसलिए जो वर्तमान में प्रवेश कर जाता है वह मन के बाहर हो जाता है। जो अतीत और भविष्य में रहता है वह मन में रहता है। अब एक बहुत मजे की बात आप से कहूँ जो आपको एकदम से समझ में शायद न भी पड़े लेकिन थोड़ा समझेंगे तो समझ में पड़ सकती है।

हम सदा कहते हैं कि समय के तीन हिस्से हैं—अतीत, वर्तमान, भविष्य। पास्ट, प्रेज़ेन्ट, फ्यूचर इसमें मूल है। प्रेजेन्ट जो है, प्रेज़ेन्ट

इज नाट ए पार्ट आफ टाइम, एट आल। वर्तमान समय का हिस्सा नहीं है। समय तो केवल अतीत और भविष्य है। वर्तमान समय से बाहर है। जहाँ अतीत समाप्त होता है और जहाँ अभी भविष्य शुरू नहीं होता उस बीच की संधि रेखा में वर्तमान है। वर्तमान समय का हिस्सा नहीं है। काम चलाऊ है बात-चीत कि वर्तमान समय का हिस्सा है। वर्तमान समय का हिस्सा नहीं है, वर्तमान अस्तित्व है। और जो समय का हिस्सा नहीं है वह मन का भी हिस्सा नहीं है।

अगर ठीक से समझें तो जिसे हम बाहर के जगत् में समय कहते हैं, टाइम कहते हैं, वही भीतर के जगत् में मन, माइण्ड है। इसे ऐसा समझ लें कि जिस घटना को हम बाहर के जगत् में समय कहते हैं उसी घटना का भीतरी नाम मन है। टाइम एण्ड माइण्ड आर रियली फिनानिन, वे बिल्कुल पर्याय हैं। उनमें कोई भेद नहीं है। इसलिए जिसे मन के बाहर जाना हो वह समय के बाहर चला जाय तो मन के बाहर पहुँच जाता है। जिसे समय के बाहर जाना हो वह मन के पार चला जाय तो समय के बाहर पहुंच जाता है। ये दोनों एक ही चीज के दो छोर हैं।

बाहर समय की तरह पहचाना जाता है जो, भीतर वही मन वर्तमान न तो समय का हिस्सा है और न मन का। वर्तमान अस्तित्व है। इसे ऐसा समझें कि अस्तित्व में न कुछ अतीत है और न कुछ भविष्य। अस्तित्व सदा है। ऐसा समझे कि आदमी चला जाय जमीन पर से तो क्या जमीन पर कोई पास्ट, कोई अतीत होगा? आदमी न हो जमीन पर, अर्थात मन न हो जमीन पर तो क्या कोई भविष्य होगा? चांद तो फिर भी निकलेगा, लेकिन चाँद भी कल निकला था, इसकी स्मृति चाँद को भी नहीं है। फूल फिर भी खिलेंगे, लेकिन फूल पहले भी खिले थे इसका कोई हिसाब फूल नहीं रखते। पक्षी फिर भी गीत गायेंगे लेकिन यह गीत कल भी गाया गया था, इसका पक्षियों के पास कोई लेखा जोखा नहीं है। और चाँद कल भी निकलेगा इसकी योजना चांद के पास नहीं और फूल कल भी खिलेंगे, उस कल का, खिलने का फूलों को कोई स्वप्न भी नहीं आता है।

मन हट जाय, ध्यान रहे, इसीलिए हमने आदमी को, शायद जमीन पर, अकेला भारत है जिसने ठीक-ठीक नाम दिया है मनुष्य। मनुष्य का मतलब है जिसके पास मन है। और मन का अर्थ है, जिसके पास अतीत का लेखा-जोखा और भविष्य की योजना और कल्पना है। मनुष्य न हो, मन न हो तो सब कुछ होगा, समय नहीं होगा। देअर शैल बी टाइम, नो लांगर। आदमी भर न हो तो समय नहीं होगा। समय आदमी के मन के साथ पैदा हुई वस्तु है। आदमी के हटते ही समय खो जाता है। यदि भीतर आप किसी ऐसी स्थिति को खोज लें, जब न अतीत है, न भविष्य तो वहाँ कोई विचार भी नहीं हो सकता क्योंकि विचार या तो अतीत के होते हैं, या भविष्य के। वहाँ कोई तृष्णा नहीं हो सकती क्योंकि तृष्णा अतीत से जन्मती है और भविष्य की तरफ दौड़ती है। वहां कोई वासना नहीं हो सकती। वहाँ होंगे सिर्फ आप, सिर्फ आपका अस्तित्व, सिर्फ होना मात्र, जस्ट बीइंग। उस क्षण में जब मृत्यु घटित हो तो लौटकर आना नहीं। मृत्यु मुक्ति बन जाती है।

जो मृत्यु मित्र है वही मुक्ति बनती है

जिन लोगों ने मृत्यु को परम मित्र कहा है तो आपकी मृत्यु को नहीं कहा है। जिन्होंने कहा मृत्यु परम सौभाग्य है तो आपकी मृत्यु को उन्होंने परम सौभाग्य नहीं कहा है। इस भूल में मत पड़ना। उन्होंने इस मृत्यु की बात कही—जो मृत्यु मित्र है। वह ऐसी मृत्यु है जो मुक्ति बन जाती है। लेकिन काल क्षण बहुमूल्य है। यदि भीतर ऐसा न हो तो फिर आप नयी यात्रा पर प्रारम्भ कर देते हैं। अतीत को समेटे हुए, भविष्य का स्वप्न देखते हुए पुनर्जन्म होता है। अतीत को समेटे हुए, भविष्य की कामना करते हुए फिर नया गर्भ धारण हो जाता है। लौट कर, आना हो तो भरा हुआ मन चाहिए। लौट कर न आना हो तो रिक्त, खाली, शून्य मन चाहिए।

शून्य मन का अर्थ है—अमन, जिसको कबीर ने अ-मनी अवस्था कहा है और जापान के झेन फकीर जिसे "स्टेट-आफ नो माइंड" कहते हैं, उसी की चर्चा कृष्ण कर रहे हैं। लेकिन मृत्यु के समय, आकस्मिक अचानक द्वार पर आ गयी मृत्यु, उस क्षण आप कैसे सँभाल पाएँगे

अपने को। यदि जीवन में प्रतिपल न सँभाला हो, तो जो ठीक से नहीं जिया वह ठीक से मर नहीं सकेगा। गलत जीने का अन्तिम परिणाम गलत मृत्यु होगी और गलत मृत्यु का अर्थ होता है कि फिर गलत जीवन का प्रारम्भ। अपने फिर बीज बो दिये। जीवन में ही सँभालना पड़े। जीते जी ही सँभालना पड़े और यह आप तभी सँभाल सकते हैं, जब आपको ख्याल हो कि जीवन के किसी भी क्षण में मृत्यु घटित हो सकती है—अभी और यहीं घटित हो सकती है। इसलिए जो कहता है, कल सँभाल लेंगे वह कभी भी नहीं सँभाल पाता है। जो कहता है, अभी और 'यहीं' वही सँभाल पाता है।

संन्यास एक घटना है

एक झेन फकीर हुआ लिंची। अपने गुरु के पास जब वह गया था तो उसके गुरु ने कहा कैसे आया है ? तो लिंची ने कहा, मैं संन्यासी होना चाहता हूँ। उसके गुरु ने कहा, होना चाहता है या अभी होने को तैयार है ? उसके गुरु ने कहा, संन्यास का भविष्य से कोई भी सम्बन्ध नहीं है। संसार का भविष्य से सम्बन्ध है। कोई आदमी कहे, एक दुकान चलाना चाहता हूँ तो भविष्य की जरूरत पड़ेगी। दुकान एक फैलाव है समय में। कोई आदमी कहे, धन कमाना चाहता हूँ तो आज इसी क्षण नहीं कमा सकता है। धन के लिए अयोजना करनी पड़ेगी—पंचवर्षीय, पचास वर्षी योजनाएँ बनानी पड़ेंगी, प्लानिंग करनी पड़ेंगी। फिर भी मिलेगा, नहीं मिलेगा नहीं कहा जा सकता। क्योंकि धन पर मेरा वश नहीं है। और बहुतों का वश भी है। और मैं अकेला धन कमाने नहीं चल पड़ा हूँ, यह सारी पृथ्वी धन कमाने चल पड़ी है। भारी प्रतिस्पर्धा है। सिर्फ धर्म को छोड़कर सभी चीजों में भारी प्रतिस्पर्धा है।

धन कमाना हो, यश कमाना हो, पदों की सीढ़ियाँ चढ़नी हो तो भविष्य के बिना कोई उपाय नहीं है। टाइम विल बी नीडेड। भविष्य चाहिए। नहीं तो कुछ भी न हो सकेगा। लेकिन यदि संन्यास लेना हो तो भविष्य की कोई भी जरूरत नहीं। इसी क्षण घट सकता है, क्योंकि संन्यास निपट नीजी है। उसका इस जगत् में किसी से कोई सम्बन्ध नहीं है। और अगर धन मैं कमाना चाहूँ तो, किसी के पास

कम होगा, या किसी के पास ज्यादा हो सकता है। कहीं न कहीं, कोई न कोई वंचित होगा।

लेकिन अगर मैं संन्यास लेता हूँ तो दुनिया में कहीं भी कोई वंचित नहीं होता। शायद मेरे संन्यास लेने से दुनिया में बहुत कुछ समृद्धि भला आ जाय लेकिन कहीं कोई वंचित नहीं होता है। क्योंकि संन्यास कोई कमोडिटी नहीं है, कोई वस्तु नहीं है कि कम हो जाएगी। फिर संन्यास कोई संसार का हिस्सा नहीं है कि मैं उसकी योजना करूँ और कल और परसों, वर्ष और दो वर्ष और प्रतीक्षा करूँ। संन्यास एक घटना है। जो उस काल, क्षण में घटती है जो अभी और यहीं है। ठीक से समझें तो संन्यास का अर्थ है, जो समय के बाहर घटित होता है। संसार का अर्थ है जो समय के भीतर घटित होता है। संसार का अर्थ है विधिन द टाइम प्रोसेस और संन्यास का अर्थ है जम्पिग आउट द टाइम प्रोसेस इसलिए जब कोई आदमी कहता है कि कल सोच कर मैं संन्यास लूँगा तो मैं जानता हूँ कि उसे पता ही नहीं कि संन्यास का अर्थ क्या है।

सोच कर जो लिया जा सकता है वह संसार होगा क्योंकि सोचेंगे क्या ? सोचने का अर्थ है, अतीत के अनुभव से पूछूँगा। सोचने का क्या अर्थ है ? भविष्य का हिसाब लगाऊँगा कि फायदा होगा कि नुकसान होगा। सोचने का अर्थ है, अतीत और भविष्य से पूछूँगा। और तो सोचने का कोई अर्थ नहीं हो सकता। लोग क्या कहेंगे, अतीत में मैं कैसा आदमी रहा हूँ, उसके साथ ताल-मेल खाएगा संन्यास, नहीं खाएगा, यह अतीत है। मुर्दों से पूछ रहे हैं—अतीत से, भविष्य से पूछने का अर्थ है अनजनमे से पूछ रहे हैं, लेकिन संन्यासी का सोचने से कोई सम्बन्ध नहीं। धर्म का ही सोचने से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसी क्षण उस संधि रेखा में, जहाँ अतीत नहीं और भविष्य नहीं, जो घटना घट जाती है, बिना विचारे जो छलांग है, कूद जाना है अपने से बाहर, वह संन्यासी है।

लिंची के गुरु ने कहा, तू लेना चाहता है संन्यास या तैयार है अभी ? उस युवक ने, लिंची ने आँखें बन्द कर लीं। सोचने लगा—गुरु ने उसे हिलाया और कहा, जरा सा विचार, और तू चूक जाएगा।

जरा सोचा कि तू गया। खोया। उस युवक ने कहा, मुझे सोच तो लेने दें, थोड़ा-सा सोच लेने दें। इतनी भी जल्दी क्या है। उसके गुरु ने कहा, काश, तुझे पता होता कि मौत किसी भी क्षण घटित हो सकती है तो तू इस तरह की बात न कहता कि इतनी भी जल्दी क्या है। और तू सोचेगा क्या? तू ही सोचेगा न? अगर तू सोच सकता होता तो बहुत पहले कभी संन्यासी हो चुका होता।

लिंची के गुरु ने कहा कि तू सोच रहा है, अगर तू सोच ही सकता तो संन्यास कभी का फलित हो गया होता। सोचकर, अगर सच में तू सोच सकता तो कोई संसार में रह सकता है? और अगर अब तक तू नहीं सोच पाया तो उसी मन को लेकर तू आगे कैसे सोचेगा। तू सोच मत। लिंची ने अपने गुरु की तरफ देखा और कहा कि मैं संन्यासी हो गया। क्योंकि अब यह भी कहना कि हो जाऊँगा, फिर भविष्य होगा, मैं हो गया। आज्ञा दें, संन्यासी को अब, अब उस आदमी को भूल जाएँ जो आया था। कहते हैं कि उसके गुरु ने अपनी पगड़ी उसके सिर पर रख दी और कहा कि मैं उस आदमी की तलाश में था जो उस काल क्षण में छलाँग लगा ले जिसका नाम वर्तमान है; क्योंकि मेरी मृत्यु करीब है, अब मैं विदा लेता हूँ, अब मेरा काम तू सँभाल ले।

लिंची ने कहा, मैं अभी अभी संन्यासी हुआ, अभी मुझे कुछ भी पता नहीं है। उसके गुरु ने कहा, सब तुझे पता हो जाएगा। जिसे वर्तमान के क्षण में खड़े होने की जरा सी भी क्षमता है उसे सब ज्ञान के रहस्य के द्वारा खुल जाते हैं। अब तुझे कहने की कुछ भी जरूरत मुझे नहीं है। और गुरु ऐसे बिना उपदेश दिये—ऐसी घटना बहुत कम घटती है। बिना उपदेश दिये गुरु तिरोहित हो गया। और लिंची ने दूसरे दिन सुबह से गुरु के मंच पर बैठकर बोलना शुरू कर दिया।

जितने ज्ञानी उसके गुरु के द्वारा पैदा हुए थे, उससे हजारों गुना ज्ञानी लिंची के द्वारा पैदा हुए। लिंची के गुरु का नाम भी पता नहीं है क्योंकि लिंची पूछ ही नहीं पाया, वह डिसअपियर हो गया। और जब भी कोई लिंची से पूछता था कि तुझे यह ज्ञान कैसे मिला तो

वह कहता था, गुरु ने तो मुझे कोई ज्ञान नहीं दिया, सिर्फ एक धक्का दिया था। लेकिन जिस दिन से मुझे यह राज मिल गया—अभी और यहीं होने का, उस दिन से कोई अज्ञान न रहा। अज्ञान के सब बादल-छँट गए। जीवन में जो वर्तमान के क्षण को पकड़ने की कला आ जाय तो कृष्ण जिस मृत्यु क्षण की बात कर रहे हैं—जिस काल क्षण की वह घटित हो सकता है।

कामना भविष्य निर्मित करती है

जिस काल में शरीर त्याग कर गये हुए योगी जन, पीछे न आने वाली गति को और पीछे आने वाली गति को भी प्राप्त होते हैं क्योंकि योगी जन भी दो प्रकार के हैं। इसमें कठिनाई होगी वाक्य को सुन-कर। क्योंकि दोनों के लिए कृष्ण योगीजन का प्रयोग करते हैं। योगीजन दो प्रकार के हैं। योग भी दो प्रकार का है—एक तो जिसे हम परम योग कहें, द सुप्रीम योग, वह परम योग अभ्यास, क्रिया साधना, इसमें भरोसा नहीं करता। उस परम योग का ही पुराना नाम सांख्य है।

सांख्य जैसी यह लिची को घटना घटी, इस तरह की घटना में भरोसा करता है, सडन इनलाइटेनमेण्ट—अगर कोई आदमी राजी है अभी और यहीं वर्तमान के क्षण में खड़े होने को तो बिना किसी योगाभ्यास के, बिना किसी ध्यान के वह घटना घट जायेगी जिससे परम से मिलन हो जाता है। क्योंकि उससे हम कभी छूटे नहीं हैं, इसलिए पाने के लिए कोई भी रास्ता तय करने की जरूरत नहीं है। जिससे हम कभी अलग नहीं हुए, उस तक पहुंचने के लिए किसी भी विधि और विधान की आवश्यकता नहीं है। जिसमें हम खड़े हैं, अभी और सदा से, क्या उसे पाने को कोई यात्रा करनी पड़ेगी? लेकिन यह बात समझ में आती नहीं। और समझ में भी आ जाए तो कोई परिणाम नहीं होता।

कृष्णमूर्ति इस सांख्य की ही चर्चा चालीस पचास वर्षों से कर रहे हैं। इन पचास वर्षों में, एक सुनिश्चित वर्ग उन्हें निरन्तर सुनता है। और निरन्तर पढ़ता है। फिर भी कहीं पहुँचता हुआ मालूम नहीं पड़ता। चालीस-चालीस वर्ष उन्हें सुनने वाले लोग मेरे पास आते

कहते हैं, सब समझ में आता है, फिर कुछ होता क्यों नहीं। सब समझ में आ गया है, फिर कुछ होता क्यों नहीं ? असल में उनको इतना ही समझ में नहीं आया कि अगर कुछ होने की आकांक्षा है तो सांख्य आपका सूत्र नहीं बन सकता। अगर यह भी आप पूछ रहे हैं कि सब समझ में आ गया, कुछ होता क्यों नहीं है। यह होता क्यों नहीं है, यह तो भविष्य है। यह होता क्यों नहीं है, यह तो वासना है।

अगर समझ में आ गया तो होना बन्द करो अब। अब भविष्य को छोड़ दो। अब यह कामना भी छोड़ दो कि कुछ हो। मोक्ष हो, आनन्द हो, परमात्मा हो, यह कामना भी सांख्य के मार्ग में बाधा है। परम योग के मार्ग में बाधा है। लेकिन कभी करोड़ दो करोड़ में कोई एकाध व्यक्ति कभी सदियों में घटित होता है जो परम सांख्य को सीधा पा लेता है, लेकिन उसका सीधा पाना भी हजारों जन्मों की लम्बी भटकन का ही परिणाम होता है। परम सांख्य को भी सीधा पाया नहीं जा सकता।

यदि कृष्णमूर्ति जैसा व्यक्ति भी पाता हो, तो वह भी अनन्त-अनन्त जन्मों की प्रतिक्रिया का फल है। लेकिन जब कोई वैसा पा लेता है तो वह दूसरों से कहता है कि कुछ करने की जरूरत नहीं है। बस हो जाओ, अभी और यहीं। वह दूसरा सुन लेता है, शब्द समझ में भी आ जाते हैं। बार-बार सुनने से और जल्दी समझ में आ जाते हैं, इसलिए कृष्णमूर्ति जैसे लोगों को वे ही लोग रोज पढ़ते रहते हैं, वे ही लोग हर वर्ष सुनते रहते हैं, क्योंकि बार-बार पुनरुक्ति से उनको यह वहम होने लगता है कि अब समझ में आने लगा। क्योंकि सब शब्द समझ में आते हैं। लेकिन फिर भी वे पूछते फिरते हैं कि कुछ हुआ नहीं।

अगर होने की ही वासना है, तो परम योग आपका मार्ग नहीं है। और होने की वासना सभी में है। मजा तो यह है कि सांख्य में भी लोग इसीलिए उत्सुक होते हैं कि अच्छा चलो, होना तो चाहते हैं। अगर आप कहते हो कि होने की वासना छोड़ोगे तभी हो पाओगे तो हम होने की वासना भी छोड़ने को तैयार हैं। लेकिन उस वासना के पीछे भी कुछ होने की कामना सदा ही मौजूद है। इसलिए बहुत

जाल है भीतर। इस जाल को तोड़ना हो तो दूसरी विधि है।

उन दूसरे योगी जन को कृष्ण ने कहा है कि और पीछे आने वाली गति को भी प्राप्त होते हैं। ऐसे योगी भी हैं, जो योगी योग की साधना किसी भी वासना से कर रहे हों चाहे वह वासना परमात्मा को पाने की वासना ही क्यों न हो, चाहे वह वासना सब वासनाओं से मुक्त हो जाने की ही वासना क्यों न हो लेकिन जहाँ भी किसी तरह की डिजायरिंग है, वहीं भविष्य आ गया। जहाँ किसी तरह की कामना, वहीं भविष्य निर्मित हो गया और जहाँ भविष्य है वहाँ अतीत से सहारा लेना पड़ेगा। क्योंकि भविष्य के अनजान लोक में आप प्रवेश कैसे करेंगे? अतीत का अनुभव ही आपका आधार बनेगा। अतीत का ज्ञान ही आपका सहारा होगा। अतीत का ज्ञान और भविष्य की कामना, वह क्षण चूक गया, उस क्षण में मरता है कोई तो फिर वापस नहीं आता। इसलिए अगर मरते क्षण में इतनी भी कामना मन में रही कि हे प्रभु अब तो उठा लो, अब पुनर्जन्म न हो, पुनर्जन्म हो गया।-

एक ८२ वर्ष के बूढ़े मित्र ने संन्यास लिया है। लेकिन बड़ी संसारी भावना से। वह आकर बोले कि मैं ८२ साल का हो गया और कम से कम सात साल से महात्माओं के दरवाजों पर चक्कर काट रहा हूँ। लेकिन अब तक कोई लाभ नहीं हुआ। लाभ! मैंने उनसे पूछा, क्या लाभ चाहते थे? उन्होंने कहा न मन को शांति मिली, न आनन्द मिला, न प्रभु का कोई दर्शन हुआ और धन संपत्ति की भी सदा तकलीफ रही, शरीर से भी दुखी रहा और अब तो थोड़े दिन बचे हैं। कहने लगे, अब आपकी शरण में आया हूँ। अब तो बस ऐसा कुछ कर दें कि दुबारा आगमन न हो। और अगर इतना भी न हो पाये तो इतना ही कर दें कि कम से कम जब तक जिन्दा हूँ किसी तरह का दुख न हो।

मैंने पूछा, कितना समय मुझे दे सकते हैं? क्योंकि जब वासना हो तो समय पहले पूछ लेना चाहिए। कितना समय? मेरे लिए कितना समय दे सकते हैं? उन्होंने कहा, ज्यादा समय तो मेरे पास है नहीं, ८२ साल का हूँ। सालभर में हो जाय, छः महीने में हो

जाय। मैंने कहा—दो चार दिन में हो जाय तो क्या ख्याल है! चित्त उनका बड़ा प्रफुल्लित हो गया। कहने लगे, फिर तो कहना ही क्या! और मैंने कहा, अभी इसी क्षण हो जाय? तब उन्हें थोड़ा शक हुआ। क्योंकि इसी क्षण का भरोसा तो किसी को भी नहीं। नहीं उन्होंने कहा इतनी जल्दी क्या, दो चार दिन में भी हो जाय।

इस क्षण का भरोसा तो किसी को नहीं है। और मैं आपसे कहता हूँ, हो सकता है तो इस क्षण में—नहीं तो न चार दिन, न चार वर्ष, न चार जन्म कुछ भी काफी नहीं है। अगर यही क्षण काफी नहीं है तो फिर सारा समय का विस्तार भी ना काफी है। अभी यह मित्र हैं, ये अगर संन्यास भी लेना चाहते हैं तो बड़ी वासना से प्रेरित होकर बड़ी गहन वासना है। पर मैं कहता हूँ, कोई हर्ज नहीं। वासना से ही सही, कूदो। शायद कूदने में ही ख्याल आ जाय कि जिस जगह कूदे वह जगह अगर मन्दिर भी थी तो हम सारी गन्दगी को साथ लेकर कूद पड़े। शायद उस मंदिर की पवित्रता के कारण इस गन्दगी को बाहर फेंक पाना संभव हो जाय। यह शायद छलांग में स्मरण आये कि छलांग भी ली तो बड़ी अधूरी, एक टांग बँधी हुई है पीछे। वासना के जगत् से पूरी की पूरी बँधी है।

इन वृद्ध जन को पूछे कोई कि पक्का किये देते हैं, अगले जन्म में भी धन की कोई तकलीफ न होगी और शरीर को कोई कष्ट न आयेगा, फिर इरादा क्या है? तो मेरी अपनी समझ यह है कि यह कहेंगे तो फिर एक दफा और कोशिश कर ली जाय। रहने दें? अगर जन्म से भी आप बचना चाहते तो किसलिए बचना चाहते हैं? इसलिए कि दुख न हो? तो आप जन्म से नहीं बचना चाहते हैं और अगर कोई भरोसा दिला दे कि हम बिना दुख का जन्म दे देते हैं तो आप पहले होंगे कतार में और भीड़ में बहुत जल्दी मचायेंगे कि भीड़ में मुझे आगे आने दो।

वासना—"वासना" है

नहीं, मुक्त तो वही होता है जिसे अगर कोई वायदा करता हो कि जीवन सुख ही सुख की शैय्या होगी, फूल ही फूल होंगे जीवन में, फिर भी वह कहता है, होंगे लेकिन सुख भी नहीं चाहिए। असल में चाह ही नहीं चाहिए। ऐसे काल क्षण में, जब कोई भी चाह नहीं

है जो शरीर से छूटता है उसकी यात्रा परम धाम की तरफ हो जात है। लेकिन अगर आखिरी क्षण में धर्म की वासना, मोक्ष की वासन पुनर्जन्म न हो, ऐसी वासना भी बनी रही तो चाहे कितना ही यो साधा हो, कितने ही आसन किये हों, कितना ही शीर्षासन लगाया है कितने घण्टे सिद्धासन में बैठे हों, चाहे कुछ भी किया हो, कित ही लाख दफे राम-राम लिखा हो, कोई अन्तर नहीं पड़ेगा। फि वापस लौट आयेंगे। हाँ, इतना अन्तर पड़ेगा कि शायद यह जो शु वासना है मोक्ष की, प्रभु मिलन की—वासना तो वासना ही है, शु है। कम से कम धन पाने की नहीं। मोक्ष में ही जाने की है, कम कम वेश्यागृह में जाने की नहीं है। शुभ है, शुक्ल है वासना, तो शाय अगले जन्म में यह भी सम्भावना बन जाय कि शुक्ल और शु वासना को भी छोड़ने की क्षमता आ जाय। लेकिन ऐसा योगी वाप लौट आयेगा।

जिसने योग साधा हो किसी वासना से वह वापस लौट आये क्योंकि वह उस काल क्षण को उपलब्ध नहीं होता जहाँ से वाप नहीं है। उन दो प्रकार के मार्गों में से जिस मार्ग में अग्नि है, ज्यो है, दिन है तथा शुक्ल पक्ष है और उत्तरायण के छः माह में मर ग गये ब्रह्मवेत्ता पुरुष ब्रह्म को प्राप्त होते हैं।

उत्तरायण और दक्षिणायन, दो मार्ग

उत्तरायण और दक्षिणायन दो मार्गों की चर्चा कृष्ण करें इस पहले सूत्र में पहले मार्ग की चर्चा है। यह चर्चा अति सूक्ष और इसमें जिन प्रतीकों का प्रयोग हुआ है उन प्रतीकों के कार गीता के इस सूत्र को करीब-करीब नहीं समझा सका है।

इस सूत्र पर प्रवेश करने के पहले दो तीन बातें ख्याल में ले ले एक तो जितने ही अन्तंजगत् की गहन बात हो उतने ही हमें प्रती चुनने पड़ते हैं। बात सीधी नहीं कही जा सकती। बात सीधे क का उपाय नहीं है क्योंकि बात कुछ ऐसी है और ऐसी मिठास तरह भीतरी है और इतनी गहन अनुभव की है कि शब्द में रखते हमें प्रतीक चुनते पड़ते हैं। सीधा कहने का उपाय नहीं।

जैसे आपके भीतर जब पहली बार आनन्द घटित होगा

आपसे कोई पूछे कि वह आनन्द कैसा था ? तो आपको कुछ-न-कुछ प्रतीक खोजने पड़ेंगे जो बिल्कुल अधूरे होंगे। सत्य को छूते भी नहीं होंगे, नहीं तो फिर कोई उपाय नहीं है। ध्यान में जो लोग गहरे उतरते हैं यदि उन्हें सम्भोग का अनुभव है, जो कि बहुत कम लोगों को है और जब मैं कहता हूँ, बहुत कम लोगों को है तो मेरा अर्थ यह है कि अधिक लोगों को केवल वीर्य स्खलन का अनुभव है, सम्भोग का अनुभव नहीं है। लेकिन किसी को कभी कोई सम्भोग का क्षण भर का अनुभव है, तो ध्यान में जब वह पहली दफा जाता है तो निरन्तर मुझे लोग आकर कहते हैं कि बड़ी हैरानी की बात है, आज ध्यान में भीतर गया तो ऐसा लगा जैसे भीतर कोई गहन सम्भोग घटित हो रहा है।

अभी एक अंग्रेज युवती मेरे पास ध्यान में प्रयोग कर रही थी। उसे जिस दिन पहली दफा ध्यान की घटना घटी, उसने मुझे आकर कहा मैं हैरान हूँ, क्योंकि मैं जीवन भर से एक ही तलाश में थी कि मुझे कोई तृप्तिदायी सम्भोग का क्षण मिल जाय। उसने न मालूम कितने पति बदले हैं और न मालूम कितने साथी बदले हैं और न मालूम कितने पुरुषों के साथ रही है, सिर्फ इस आशा में कि किसी दिन सम्भोग का ऐसा क्षण मिल जाय। इस आदमी से नहीं मिलता, दूसरे से मिल जाय, तीसरे से मिल जाय। ध्यान के पहले अनुभव में उसने आकर मुझसे कहा, मैं हैरान हूँ जिसकी खोज मैं सम्भोग में कर रही थी वह तो मुझे कभी नहीं मिला, लेकिन ध्यान में मुझे वह पहली दफे मिला है जिसकी कोई धुँधली-सी आकांक्षा मेरे भीतर थी। मैं गहन सम्भोग में उतर गई। स्वभावतः सम्भोग और ध्यान के उस अनुभव में कोई ऐसा फासला है, इतना फासला—जसे आकाश में कोई तारा निकले और तारे की छाया आपके घर में भरे हुए गन्दे डबरे में बन जाय। उस तारे की छाया में और उस तारे में जितना फासला है उतना ही फासला है, लेकिन फिर भी तो है, रिफ्लेक्टिव तो है।

तो जब भी कोई अन्तर अनुभव में उतरता है तो उसे प्रतीक चुनने पड़ते हैं जो प्रतीक बाहर के जगत् से लिए गए हों। उन प्रतीकों के कारण बड़ी कठिनाई होती है। जैसे समस्त योग शास्त्रों ने योग-

विधियों ने दो तरह के पथ—विशेषकर वैदिक युग ने दो तरह के पथ विभाजित किए हैं, जिनसे मनुष्य की चेतना यात्रा करती है। तो पहले तो हम उन दो पथों का विभाजन समझ लें। सूर्य जब भूमध्य रेखा के उत्तर में होता है बढ़ता हुआ, तो एक उत्तर का पथ और जब सूर्य भूमध्य रेखा से दक्षिण की तरफ नीचे उतरता हुआ बढ़ता है तो दूसरा दक्षिण का पथ।

अगर हम आदमी को भी ठीक पृथ्वी की तरह दो हिस्सों में बांट लें तो सेक्स सेन्टर जो है, आदमी का जो कामवासना केन्द्र है, उसके नीचे का हिस्सा दक्षिण मान लें और उस केन्द्र से ऊपर का हिस्सा उत्तर मान लें तो मनुष्य के भीतर एक अग्नि है, उसकी मैं बात करूँगा, वही मनुष्य की उर्जा है, बायो एनर्जी। जिसको अब पश्चिम में जीव-शास्त्री बायो एनर्जी कहते हैं, जीव उर्जा कहते हैं, उस जीव उर्जा को भारत ने सदा सूर्य के प्रतीक में समझा है। क्योंकि समस्त जीव उर्जा सूर्य से ही प्राप्त होती है। अगर फूल खिलता है, पौधे बड़े होते हैं, आदमी के गर्भ का विकास होता है, आदमी बढ़ता है तो सूर्य के कारण। हमारे भीतर जो जीव उर्जा है वह सूर्य से ही हमें उपलब्ध होती है। इसलिए बहुत उचित है कि उस भीतर की उर्जा के लिए सूर्य का ही प्रयोग किया जाय, ठीक वैसे ही जैसे तारे के झलकने को हम पानी के डबरे में देखें और दोनों में सम्बन्ध जोड़ लें।

आदमी की चेतना में जो भी घटनाएँ घटती हैं वे बहुत गहन रूप से सूर्य से सम्बन्धित हैं।

तो मनुष्य को भी हम दो हिस्सों में तोड़ लें—भूमध्य रेखा बना लें। मनुष्य के कामवासना के केन्द्र से एक रेखा खींच दें तो नीचे का हिस्सा दक्षिण पथ होगा, ऊपर का हिस्सा उत्तर पथ होगा। जब जीव ऊर्जा दक्षिण की तरफ उतरती रहती है यानी पैरों की तरफ उतरती रहती है तब जो मृत्यु घटित होती है वह एक तरफ की मृत्यु है। और जब जीव उर्जा काम केन्द्र से ऊपर की तरफ उठती है और सिर की तरफ प्रवाहित होती है, उत्तर की तरफ, उत्तरायण, तब जो मृत्यु घटित होती है वह और ही तरह की मृत्यु है। और इन दोनों की यात्राएँ अलग हो जाती हैं।

जब जीव उर्जा नीचे की तरफ उतरती है, जो कि हमारी समस्त वासनाओं में उतरती है, इसलिए कामवासना हमारी सब से केन्द्रीय वासना है, क्योंकि सर्वाधिक ऊर्जा को हमारी कामवासना का केन्द्र ही नीचे की तरफ, अधोगमन की तरफ भेजता है। एक बहुत मजे की बात आपसे कहूँ, जब तक आपका चित्त कामवासना से भरा रहता है तब तक आपके पैर के तलुवे सदा गरम रहेंगे। लेकिन जैसे ही आपकी काम ऊर्जा काम केन्द्र से नीचे की तरफ न बह कर ऊपर की तरफ बहने लगेगी, ऊर्ध्वमुखी होगी तो वैसे ही आपके पैर ठण्डे होने शुरू हो जाएंगे। और आपका सिर गरम होना शुरू हो जाएगा। बुद्ध जैसे योगी के पैर बिलकुल ही शीतल, आइसकूल्ड, बिलकुल शीतल, बर्फीले शीतल होते हैं।

गुरु के चरणों में सिर रखने का महत्व

बहुत पुराने दिनों से गुरु के चरणों में सिर रखने का बहुत महत्वपूर्ण उपयोग था। वह डायोगोनेसिस था, जैसे कि चिकित्सक नाड़ी पर किसी के हाथ रख ले। गुरु के चरणों में पैर रखकर शिष्य पहचान लेता था कि अभी यह व्यक्ति उत्तरायण हुआ या नहीं और गुरु अपना हाथ उसके सिर पर रखकर पहचान लेता था कि दक्षिणायन कहां तक होगा। यह बहुत चुपचाप हो गया निदान था। इसके लिए बातचीत भी नहीं करनी पड़ती थी, चुपचाप हो जाता था। मन ही मन बात समझ ली जाती और हिसाब हो जाते थे कि क्या करना है, क्या नहीं करना है।

और एक दफा शिष्य ठीक से पहचान लेता था गुरु के चरणों में सिर रखकर तो फिर वह पता नहीं लगाता था कि गुरु का चरित्र कैसा है, कैसा नहीं है। उसको प्रयोजन नहीं था। पैरों ने सब उसे कह दिया था। और एक दफा गुरु पहचान लेता था सिर पर हाथ रखकर तो वह नहीं पूछता था कि तुम क्या कर रहे हो? क्या नहीं कर रहे हो? क्योंकि वह जानता था कि तुम क्या कर रहे हो। क्या हो रहा है भीतर।

सांइकोएनालिसिस करते वक्त फायड, जुंग और एडलर जो वर्षों में नहीं पहचान पाते वह भारतीय गुरु सिर्फ सिर पर हाथ रखकर

पहचान लेता था। जैसे मरीज नाड़ी से पहचान लिये जाते वैसे इ उत्तरायण और दक्षिणायन व्यवस्था को भी बड़ी सरलता से पहचान जा सकता है क्योंकि ऊर्जा फौरन खबर देती है कि कहाँ है। जह भी ऊर्जा प्रवाहित होती है वहां उष्ण हो जाता है और जहां से ऊर्ज हट जाती है वहां शीतल हो जाता है।

इसीलिए, चिकित्सक तो कहेंगे कि यह आदमी बीमार है, अग पैर ठण्डा हो तो चिकित्सक तो कहेगा कि आदमी बीमार है। खतर तो है ही। खतरा इसलिए है कि इसकी जीव ऊर्जा अब शरीर के बाहर निकलने के करीब है, यह मर सकता है। बायोलाजिकल जीव शास्त्र के हिसाब से पैरों का ठण्डा होना स्वास्थ्यप्रद नहीं है वह स्वास्थ्य में खराबी का सूचक है। ठीक नहीं है क्योंकि अग शरीर को जिलाना है तो शरीर तभी तक ठीक से जीता है जब त शरीर की वासना नीचे की तरफ बहती हो। जैसे ही वासना ऊपर क तरफ बहने लगती है वैसे ही शरीर का कोई प्रयोजन नहीं रह गया

लेकिन इससे आप यह मत समझ लेना कि अगर आपके पैर ठण्डे ह तो आपकी ऊर्जा ऊपर बह रही है। पहले तो चिकित्सक से पूछना सौ में निन्यावे मौके तो यह होंगे कि आप सिर्फ बीमार हैं। तो ज मैं कहता हूँ कि ज्ञानी के पैर ठण्डे हो जाते हैं तो मैं यह नहीं क रहा हूँ कि जिनके ठण्डे हो जाते हैं वे ज्ञानी हैं। द वाइस वरसा इज ना राइट, विपरीत ठीक नहीं है। इसलिए जो बहुत कामातुर हैं, अग वे शीर्षासन करें तो उन्हें थोड़ा लाभ होगा क्योंकि उनकी थोड़ी स उर्जा सिर की तरफ बहनी शुरू हो जाती है। इसलिए काम वासन से पीड़ित व्यक्ति को शीर्षासन लाभ पहुँचा सकता है। लेकि क्षणिक ही, क्योंकि कितनी देर सिर के बल खड़े रहियेगा। आखि पैर के बल खड़े होंगे, ऊर्जा फिर बहनी शुरू हो जाएगी।

धैर्य की जरूरत अन्तिम क्षणों में

पहला तो विभाजन यह समझ लें कि काम केन्द्र से नीचे क तरफ बहती ऊर्जा दक्षिण पथ है आपके भीतर के सूर्य का। औ अगर मरते क्षण भी आपकी ऊर्जा पैरों की तरफ बह रही हो का केन्द्र में तो फिर आप पुनर्जन्म से मुक्त नहीं हो सकते। लेकिन अग

ऊर्जा आपकी ऊपर बह रही हो, ऊर्ध्वमुखी हो तो आप मुक्त हो सकते हैं।

इसलिए उत्तरायण के छः मास, इसका प्रतीक अर्थ आप समझ लेना, उत्तरायण के छः माह, अर्थात् आपके जीवन का जो आधा हिस्सा है आपकी देह का उसी की ओर इशारा है। इसका इशारा एक और भी है कि आदमी अगर सत्तर साल जीता है या सौ साल जीता है—अगर सौ साल जीता है तो पचास साल समय में हम रेखा खींच लें तो पचास साल तक माना जा सकता है कि उसकी ऊर्जा नीचे की तरफ बहती रहे, लेकिन आने वाले पचास साल में भी अगर नीचे की तरफ बहे तो वह आदमी आत्मघाती है, वह अपने जीवन को व्यर्थ कर रहा है। उत्तरायण उसके जीवन का शुरू हो जाना चाहिए।

इसलिए हमने जो आश्रम बांटे थे चार, पचास के साथ उत्तरायण शुरू होता था। पचासवें वर्ष में व्यक्ति को वानप्रस्थ हो जाना चाहिए। पच्चीस साल घर में ही रहे, लेकिन ऊर्जा को अब ऊपर ले जाने में संलग्न हो और जिस दिन पचहत्तर साल की उम्र में वह पाए कि अब ऊर्जा ऊपर जाने में समर्थ हो गई तो वह घर छोड़ दे। और समग्र रूप से ऊर्ध्वगामी हो जाये। वह संन्यस्त हो जाए। अगर आज हम ऐसा समझें कि सत्तर साल उम्र है तो पैंतीस साल के बाद काम ऊर्जा जीवन ऊर्जा को उत्तरायण पर जाना चाहिए। अगर पैंतीस साल में आपकी काम ऊर्जा का उत्तरायण शुरू नहीं होता तो मरते वक्त तक आप उत्तरायण में पहुंच नहीं पायेंगे, दक्षिणायन में ही मृत्यु होगी।

यह दूसरा विभाजन समझ लें, और इसके बाद एक-एक प्रतीक को समझ लें। उन प्रतीकों से भी बड़ी भूल हुई। उन दो प्रकार के मार्गों में जिस मार्ग में अग्नि है, ज्योति है, दिन है तथा शुक्ल पक्ष है और उत्तरायण का अर्द्ध वर्ष है, उस मार्ग में मर गये हुये ब्रह्मवेत्ता पुरुष ब्रह्म को उपलब्ध होते हैं। अग्नि, ज्योति, दिन और शुक्ल पक्ष चार शब्दों का प्रयोग किया है। न अग्नि से मतलब है, न ज्योति से, न दिन से, न शुक्ल पक्ष से, फिर भी मतलब है क्योंकि वह प्रतीक

आपको क्रमशः समझाने में सहयोगी होंगे।

अग्नि में ईंधन भी होगा, अग्नि भी होगी लेकिन उत्ताप होगा ज्योति में ईंधन नहीं—ये प्रतीक हैं, ईंधन नहीं, धुआं नहीं उत्ताप भी कम हो जायेगा। अग्नि केयोटिक होती है, उसकी लपटें कहीं भी दौड़ती रहती हैं। ज्योति में लपट स्थिर हो जायेगी और एक बन जायेगी। अग्नि अनेक लपटों वाली होगी, ज्योति एक लपट वाली होगी। और एक यात्रा पर संलग्न हो जायेगी। दिन-दिन और भी उदार हो गया। अब लपट भी नहीं, केवल प्रकाश। अगर दिन को ठीक से पहचानना हो तो उस समय को दिन समझें जब सुबह, रात जा चुकी होती है और सूरज नहीं निकला होता है। तब जो आलोक फैला होता है चारों ओर वही दिन है।

फिर तो सूरज आ जाता है, तो सूरज के आने से गहन अग्नि का प्रभाव शुरू हो जाता है। उत्ताप शुरू हो जाता है। सुबह भोर के समय में जब रात जा चुकी और दिन—सूर्य वाला दिन अभी आया तो बीच में एक जो उषा का क्षण है जब सिर्फ प्रकाश होता है जिस प्रकाश में उत्ताप नहीं होता, वही दिवस है, वही दिन है। ज्योति में ताप तो होगा ही, दिन में ताप भी खो जाता है। वह भी प्रकाश का एक रूप है लेकिन क्रमशः प्रकाश जो है नानवायलेंट होता चला जाता है। अहिंसक होता चला जाता है। लेकिन उसमें भी पूरी शीतलता नहीं होती क्योंकि सूरज कहीं निकट ही छिपा होता है और जल्दी ही आने के करीब होता है। सच तो यह है कि वह होता ही इसलिए है कि सूरज आ चुका होता है क्षितिज के बिल्कुल निकट, प्रगट नहीं हुआ होता लेकिन उसकी मौजूदगी इतने निकट होती है कि प्रकाश फैल जाता है। तो कहीं थोड़ा सा ताप तो उसमें छिपा ही होगा। वह ताप भी चला जाय तो फिर शुक्ल पक्ष, जैसा कि चांद की रात होती है। सूरज बहुत दूर है, गर्मी का कोई सवाल नहीं। प्रकाश भी है और परम शीतल भी।

जो व्यक्ति अपनी ऊर्जा को काम केन्द्र से ऊपर की तरफ यात्रा पर ले जाता है, पहला अनुभव उसे अग्नि का होता है। जो व्यक्ति अपनी सेक्स एनर्जी को, बायो एनर्जी को ऊपर की तरफ ले जाता

है, पहला अनुभव अग्नि का होता है। वह अनुभव जस्ट लाइक फायर, बहुत उत्ताप का होता है। काम केन्द्र बिल्कुल जल उठता है, लपटें भर जाती हैं। लेकिन अगर वह साहस न रखे और जल्दी न करे, और इन लपटों से मुक्त न होना चाहे, क्योंकि मुक्त होने का वह एक ही रास्ता जानता है कि वह इनको बहिर्गमन कर दे। इनको नीचे की यात्रा पर चला जाने दे ! तो पश्चिम में जहां कामवासना के सम्बन्ध में कम से कम समझ है और ज्यादा से ज्यादा आकर्षण है वहां भी समझते हैं कि कामवासना का उपयोग वैसा ही है जैसे कि कोई आदमी छींक का उपयोग करता है, बस इससे ज्यादा नहीं। समथिंग लाइक ए रिलीफ। कुछ भीतर बेचैनी है, उसको फेंक देना है बाहर, छूटकारा हो।

काम ऊर्जा का कोई विधायक अर्थ भी हो सकता है। काम ऊर्जा रूपांतरित हो सकती है, या काम ऊर्जा परम अनुभव की तरफ ले जा सकती है, इसकी पश्चिम में कोई दृष्टि नहीं है। पूरब में भी वह बात फैलती चली जाती है। लोग कामवासना को भी ऐसा ही समझते हैं कि जैसे शरीर से और मल फेंक देते हैं वैसे ही कामवासना भी शरीर की शुद्धि का एक उपाय है—शरीर के हल्के कर लेने का, तनाव को विसर्जित कर देने का, एक रिलीफ, छींक जैसे आ जाय। अगर जल्दी न की और काम केन्द्र पर जब शक्ति ज्यादा इकट्ठी होती है तो अग्नि बढ़नी शुरू होती है क्योंकि ऊर्जा जो काम केन्द्र पर इकट्ठी होती है वह बहुत संक्षिप्त रूप में सूर्य से ही उपलब्ध हुई है। और एक छोटा सा सूर्य सेक्स सेन्टर पर निर्मित हो जाता है, एक बहुत छोटा बिन्दु गहन अग्नि का। अगर जल्दी की तो वह नीचे बिखर जाता, अगर जल्दी न की, उसे सहने की हिम्मत रखी और राजी रहे कि जो कुछ भी हो लेकिन यात्रा ऊपर की ही करनी है और इस ऊर्जा को ऊपर को ही करनी है और इस ऊर्जा को ऊपर ही ले जाना है, और ऊपर, और ऊपर तो बहुत शीघ्र वह जो सूर्य की तरह गोल बिन्दु था एक लपट बन जाता है। वह जो अग्नि थी एक लपट बन जाती है। एक ज्योति जैसे दिये की ज्योति ऊपर की तरफ भागती हो। वैसी ज्योति बन जाती है। इस ज्योति के

बनते ही परम आनन्द अनुभव होता है। क्योंकि ताप कम हो जाता है। दहकता अँगारा पिघल जाता है और ज्योति बन जाता है।

लेकिन इस ज्योति में भी ताप है, इस ज्योति में हलन चलन तो है ही, मूवमेंट तो है ही, चंचलता तो है ही। और कोई भी हवा का झोंका हो, वासना का तीव्र झोंका हो, वह इस ज्योति को भी नीचे ले जा सकता है। अगर और संयम रखा, और धैर्य रखा तो यह ज्योति दिन की तरफ हो जाती है। जैसे सुबह सूरज नहीं निकला, रात जा चुकी, तारे छिप गये और अकाश में सूरज का कोई पता नहीं और दिग्दिगंत सिर्फ सुबह के प्रकाश से भर गये। बहुत आलोक से । जरा भी उत्ताप नहीं। यह लपट बहुत शीघ्र ही जैसे और ऊपर उठती है, आलोक बन जाती है। लेकिन अभी फिर भी, अभी फिर भी इसमें लपट का थोड़ा सा हिस्सा रह जाता है। क्योंकि ज्योति ही बिखर कर बनती है आलोक—तो ज़्योति के कण इसमें मौजूद होते हैं। इसमें थोड़ा उत्ताप अभी भी है। बहुत न्यून, लेकिन अभी भी। हम इतना ही कह सकते हैं, कि इसमें उत्ताप नहीं है, निगेटिवली। अभी यह नहीं कह सकते कि यह शीतल हो गया है। अभी रूपान्तरण पूरा नहीं हुआ।

रूपान्तरण तो तब पूरा होता है जब हम और धैर्य रखते हैं। और ध्यान रहे इस तीसरे क्षण में धैर्य की सर्वाधिक जरूरत पड़ती है साधक को। अग्नि को सह लेना उतना कठिन नहीं है। इसलिए कठिन नहीं है कि पीड़ा तो बहुत होती है अग्नि में, लेकिन अग्नि से ऊब पैदा नहीं होती। उसमें बड़ी उत्तेजना है। उत्तेजना के साथ हम जी सकते हैं ज्यादा। लपट के साथ, ज्योति के साथ भी जी लेना बहुत कठिन नहीं है। उसमें भी चंचलता होगी। और चंचलता में मन ज्यादा जी लेता है क्योंकि बदलाहट बनी रहती है। लेकिन जब दिवस होता है, तीसरी घड़ी आती है और दिन जैसा प्रकाश रह जाता है तो बहुत बोर्डम पैदा होती है। इसलिए तीसरी अवस्था में अक्सर साधक एकदम उदास हो जाता है। उदासीन हो जाता है। सब तेजस्विता खो जाती है। अग्नि के क्षण में साधक बहुत तेजस्वी मालूम पड़ता है, अंगार जैसा मालूम पड़ता है। ज्योति

के समय तेजस्विता कम होगी, लेकिन फिर भी उत्तप्तता होती है। ज्योति होती है, लेकिन तीसरे क्षण में ज्योति भी खो जाती है और एक गहन उदासी भी पकड़ ले सकती है। ऊब भी पकड़ती है क्योंकि कुछ बदलाहट नहीं होती। कहीं कोई कंपन भी नहीं रहता, सिर्फ खाली प्रकाश रह जाता है।

इस समय धैर्य की बहुत जरूरत है। धैर्य की जरूरत सदा ही अंतिम क्षणों में ज्यादा होती है। क्योंकि मन उसी वक्त ज्यादा बेचैन करता है। अभी भी वापस लौट जा सकता है। क्योंकि ताप अभी भी मौजूद है जो फिर से सेक्स एनर्जी बन सकता है। जब तक ताप है, जब तक हीट है इसलिए हम जानवरों को तो कहते हैं कि जब वह कामवासना में भरे होते हैं तो हम कहते हैं ओन हीट। आदमी भी अब कामवासना में भरा होता है तो ओन हीट, तप्त होता है। तो जब आप कामवासना से भरते हैं तो पूरा शरीर तप्त हो जाता है। सारा शरीर ईंधन बन जाता है। पसीना आ जाता है, हृदय की धड़कनें बढ़ जाती हैं। साँस गर्म हो जाती है, शरीर से बदबू निकलनी शुरू हो जाती है। सब भीतर आग हो जाता है। अभी भी दिन से भी वापस गिरा जा सकता है क्योंकि ताप अभी भी बिखर गया, डिफ्यूस्ड है, लेकिन है, अभी फिर से इकट्ठा होकर वापस लौट सकता है।

अगर अभी धैर्य रखा, शाँति रखी और साधना ऊर्ध्वगमन की जारी रखी तो अन्तिम घटना घटती है, वह ऐसा हो जाता है भीतर प्रकाश जैसा शुक्ल पक्ष में होता है। लेकिन शुक्ल पक्ष क्यों कहा, पूर्णिमा ही कह देते। पूरे पक्ष को ही कहने की क्या जरूरत पड़ी? क्योंकि पहले दिन एकम के चाँद जैसी ही घटना घटती है। और जैसे चाँद पन्द्रह दिनों में पूरा होता ऐसा पन्द्रह स्टेजेज में यह चौथी घटना पूरी होती है और जिस दिन पूर्णिमा हो जाती है भीतर, पूरे चाँद की रात जैसी शीतलता हो जाती है। उस क्षण में अगर मृत्यु हो जाय तो बुद्धत्व प्राप्त होगा, ब्रह्म की उपलब्धि होती है।

उत्तरायण-दक्षिणायन मात्र प्रतीक

बुद्ध के संबन्ध में कथा है कि उनका जन्म भी पूर्णिमा के दिन हुआ। उनको पहली महा-समाधि, पहली संबोधि, पहला बुद्धत्व भी

पूर्णिमा के दिन मिला और उनका महापरिनिर्वाण, उनकी मृत्यु भी पूर्णिमा के दिन हुई। जरूरी नहीं है कि हिस्टारिकली सही हो। ऐतिहासिक रूपसे जरूरी नहीं है कि सही हो। हो भी सकता है सही हो लेकिन इसका ऐतिहासिक मूल्य नहीं है। इसका मूल्य तो इस भीतर के शुक्ल पक्ष के लिए है। इस भीतर के शुक्ल पक्ष के लिए है। इस चौथी अवस्था के भी ठीक वैसे ही पन्द्रह टुकड़े किये जा सकते हैं जैसे बढ़ते हुए चाँद के होते हैं। और जब कोई व्यक्ति पूर्णिमा की स्थिति में गुजरता है, पूर्णिमा की स्थिति में विदा होता है पृथ्वी से, उसके लौटने का कोई उपाय नहीं होता। और उत्तरायण के छः माह—वे ही उत्तरायण के छः माह हैं। इसे एक तरफ से और ख्याल में ले लें क्योंकि ये प्रतीक जटिल हैं और बहुसूची हैं। और बहु अर्थी हैं।

मनुष्य के सात चक्र हैं। अगर हम काम केन्द्र को, सेक्स सेन्टर को एक पहला चक्र मान लें तो बाकी फिर छः चक्र और रह जाते हैं। सेक्स सेन्टर को मैंने कहा, हम भूमध्य रेखा मान लें तो उसको चक्र गिनने की जरूरत नहीं। फिर छः चक्र रह जाते हैं। वे छः माह हैं। ठीक वैसे ही छः चक्र काम सेन्टर नीचे भी होते हैं, लेकिन उनकी चर्चा ज्ञानियों ने नहीं की क्योंकि उनका कोई प्रयोजन नहीं है। अगर हम इन छः की संख्या को ध्यान में रखें तो भी उत्तरायण के छः माह हमारे ख्याल में आ जायेंगे।

यदि ऐसी घटना घटे और ऐसी घटना घटती है कि जब भीतर पूर्णिमा की स्थिति आ जाती है चार अग्नि की यात्राओं को पार करके, ठीक उसी समय छः माह को पार करके सहस्त्रार पर छः चक्रों को पार करके सहस्त्रार पर भी चेतना पहुँच जाती है। सहस्त्रार पर ही चेतना और पूर्णिमा जैसा प्रकाश हो तो ब्रह्म की उपलब्धि होती है। उस क्षण में मर जाने से ज्यादा बड़ा सौभाग्य और कोई भी नहीं है। उस क्षण में जीना भी सौभाग्य है, उस क्षण में मरना भी सौभाग्य है। उस क्षण में कुछ भी घटित हो तो सौभाग्य है। यह भी जान लें कि वहां से वापसी नहीं है।

ज्ञानी का दिखाई पड़ना मात्र-छाया है

बुद्ध को ज्ञान तो हुआ मृत्यु के चालीस साल पहले, महावीर को

भी कोई बयालीस साल पहले। जिस दिन ज्ञान हुआ, उसी दिन शुक्ल पक्ष पूरा हो गया। उसी दिन उत्तरायण का सूर्य अपनी पूरी स्थिति पर पहुंच गया। उस दिन से नीचे लौटना बन्द हो गया लेकिन मृत्यु तो चालीस साल बाद घटित हुई। इसलिए बुद्धों ने अच्छा शब्द चुना है। वह कहते हैं, जिस दिन बुद्ध को बुद्धत्व मिला, मरने के चालीस साल पहले, उसे वह कहते हैं निर्वाण। उस दिन एक अर्थ में तो मृत्यु हो गयी क्योंकि अब कोई वापसी नहीं है। फिर जिस दिन वस्तुतः मृत्यु हुई, शरीर छूटा उसे वे कहते हैं, महापरिनिर्वाण। उस दिन शरीर भी छूटा।

जहां तक भीतर का सम्बन्ध है, उसी दिन छूट गया। जहाँ तक बाहर का सम्बन्ध है जगत् के जानने का, वह चालीस साल बाद छूटा। लेकिन इन चालीस साल में भीतर समय ने एक क्षण भी गति नहीं की। इन चालीस साल में बाहर की घड़ी बताती रही, दिन आये, रात आयीं, समय बीता, वर्ष बीते, माह बीते, चालीस वर्ष बीते लेकिन भीतर की घड़ी उस दिन के बाद फिर नहीं चली। भीतर फिर एक क्षण भी नहीं बीता। बुद्ध से मरने के दिन ही कोई पूछता है—"महाकाश्यप" पूछता है बुद्ध से कि आज आप खो जायेंगे मृत्यु में, हम सबका क्या होगा? बुद्ध ने कहा, मुझे खोये काफी समय हो चुका है। मैं, तुम्हें जो दिखायी पड़ता था वह छायामात्र था। उसमें मेरा होना, न होना बराबर था। मैं मर चुका हूँ उसी दिन, जिस दिन मैंने जाना स्वयं को, उसी दिन मर चुका हूँ। महाकाश्यप ने पूछा, फिर आप इतने दिन जिये कैसे? अगर वासना नहीं रही, तृष्णा नहीं रही, और आप कहते हैं, मैं मर चुका, तो इतने दिन आप जिये कैसे। खाते थे, पीते थे, चलते थे। हमने अपनी आँखों देखा है। बुद्ध ने कहा, बाहर, लेकिन भीतर न मैंने खाया, न मैं चला। भीतर मैंने कुछ भी नहीं किया। "महाकाश्यप" पूछता है, लेकिन बाहर तो किया? बाहर भी क्यों किया? अगर सब समाप्त हो गया है। तो बुद्ध कहते हैं, बाहर करने का कारण है। पिछले जन्मों में इस शरीर की जितनी उम्र मैंने कमायी थी उस उम्र के पूर्व ही भीतर की घटना घट गयी। उतनी उम्र पूरी होगी। यह शरीर तो अपनी विधि

को पूरा करेगा।

यह करीब-करीब वैसे है जैसे एक आदमी सायकिल चला रहा है और पैडल मारता चला जाता है। जब तक पैडल चलाता है, सायकिल चलती है। पैडल रोक देता है तब भी सायकिल एकदम नहीं रुक जाती। दस, पचास, सौ दो सौ कदम चलती चली जाती है, मोमेंटम। इतनी देर तक पैरों से जो पैडल मारा है तो हर पैडल सायकिल को चलाता ही नहीं, हर पैडल की कुछ शक्ति बच जाती है, इकट्ठी हो जाती है और जब आप पैडल रोकते हैं तो वह अर्जित, रिजर्वायर शक्ति जो कुछ इकट्ठी हो गयी वह थोड़ी दूर तक चला देती है।

एक बहुत मजे की घटना इस सम्बन्ध में आप से कहूँ :—

बुद्ध को जब ज्ञान हुआ तो वह पैंतीस साल पार कर चुके। जिन लोगों को भी पैंतीस साल के बाद जीवन की मध्य रेखा के बाद ज्ञान होता है वे काफी देर तक जिन्दा रह जाते हैं। क्यों ? इसे ऐसा समझें कि आप साइकिल पर पैडल मार रहे हैं, अगर आप चढ़ाव पर पैडल मार रहे हैं तो आपके पैडल रोकते ही साइकल दो चार कदम चल जाय तो बहुत है। अगर उतार पर पैडल मार रहे हैं तो आपके पैडल रोक लेने पर साइकल काफी चल सकती है। इसलिए अक्सर ऐसा हुआ कि जिन लोगों को पच्चीस साल के बाद ज्ञान हुआ, वे तीस चालीस साल और जी सके—बुद्ध या महावीर। लेकिन जिन लोगों को पच्चीस साल के पहले ज्ञान हो गया वे ज्यादा नहीं जी सके—शंकर या क्राइस्ट या और इस तरह के लोग। जिनको भी पहले ज्ञान हो जायेगा तो फिर साइकिल चलानी बड़ी मुश्किल बात है। चढ़ाव पर अति कठिन है। और अगर चलानी हो तो बहुत उपाय करने पड़ेंगे। रामकृष्ण को भी ज्ञान पैंतीस के पहले ही हो गया और बड़ी मुश्किल थी उनको—जितने दिन वे जिन्दा रहे—बहुत मुश्किल काम था। और शायद बहुत कम लोगों ने उस तरह की चेष्टा की है। रामकृष्ण कुछ चीजों में अपना लगाव बनाये रखे थे। लगाव—जानकर, कोशिश करके। भोजन में उनका बहुत लगाव था। कोई सोच भी नहीं सकता कि इस हैसियत का व्यक्ति और

दो-चार बार चौके में पहुँच जाता हो और पूछता हो कि क्या बना। "शारदा" उनकी पत्नी उन्हें कहती थी कि परमहंस देव; तुम्हारा चौके में बीच-बीच में उठकर आकर पूछना बड़ा अशोभन मालूम पड़ता है। लोग क्या सोचते होंगे। सत्संग चलता था, ब्रह्म-चर्चा चलती थी, "अचानक रोक कर, मैं अभी आया", आप चौके में चले आते हैं। जो बैठे हैं क्या नहीं सोचते होंगे? रामकृष्ण हँसते थे और टाल देते थे।

क्योंकि कुछ बातें हैं, जिनके जवाब नहीं दिये जा सकते। नहीं दिये जा सकते हैं इसलिए नहीं कि नहीं दिये जा सकते, नहीं दिये जा सकते इसलिए कि जिसको दिये जाने हैं वह उनको बिल्कुल ही नहीं समझ पायेगा। लेकिन शारदा पीछे ही पड़ी रही। एक दिन रामकृष्ण ने कहा कि तू नहीं मानती है तो मैं तुझे कहता हूँ। मेरी नाव ने किनारे से सब तरह की रस्सियाँ खोल ली हैं अपनी, लेकिन एक खूँटी से मैं अपने को बाँधे रखना चाहता हूँ, उन लोगों के लिए जिनकी मैं प्रतीक्षा कर रहा हूँ। मैं उनसे कह दूँ, जो मैं कहना चाहता हूँ और फिर मैं अपनी नाव को खोल दूँ पूरा ताकि मैं अपनी यात्रा —मैं अपनी महायात्रा पर निकल जाऊँ। तो मैं इस भोजन में इतना लगाव रखता हूँ सिर्फ इसलिए कि एक खूँटी गड़ी रहे शरीर के साथ अन्यथा यह इसी वक्त गिर सकता है।

तो "शारदा" से "रामकृष्ण" ने कहा—कि अब मैं तुझे बता देता हूँ, तू नहीं मानती तो तुझे बता देता हूँ। जिस दिन मैं भोजन में रस न लूँ, समझ लेना कि वह मेरे मृत्यु का निकट है और उसके तीन दिन बाद मैं मर जाऊँगा। ठीक तीन दिन बाद। शारदा ने उस दिन तो गम्भीरता से नहीं लिया, लेकिन एक दिन वह घड़ी आ गयी। रामकृष्ण बिस्तर पर लेटे थे और उस दिन चौके में उठकर नहीं आये थे। शारदा थोड़ी-बेचैन हुई। कितना ही समझाओ, वे नहीं मानते थे। बीमार भी हों तो उठकर आते थे। आज नहीं आये पता लगाने कि क्या बना है। शारदा थाली लेकर कमरे में आयी तो रामकृष्ण ने थाली देख कर करवट बदल ली। शारदा के हाथ से थाली छूट पड़ी। उसे याद आया कि उन्होंने कहा था जिस

दिन मैं भोजन में अरुचि दिखाऊँ उस दिन समझना, बस अब आखिरी दिन करीब है। तीन दिन और बाकी रहे। तो ठीक तीन दिन बाद रामकृष्ण की मृत्यु हुई।

तो अगर चढ़ाव पर हो तो बहुत मुश्किल हो जाता है। लेकिन बुद्ध और महावीर दोनों उतार पर थे। इसलिए चालीस बयालीस साल दोनों जिये। लेकिन वह पुराना मोमेंटम है जन्मों-जन्मों के कदमों की ताकत और जब भी किसी व्यक्ति को पच्चीस साल के पहले अनुभव आता है तो बड़ी अड़चन हो जाती है। और जिनके लिए वह रुकता है वे ही हजार अड़चनें खड़ी करते हैं कि आपने ऐसा क्यों किया, आपने ऐसा क्यों किया। आप ऐसा क्यों करते हैं। वह कहीं किनारे पर अपनी कुछ खूंटियां गाड़कर रखना चाहता है, शायद किसी प्रतीक्षा में। इस क्षण में दक्षिणायन और अग्नि बन गयी हो पूर्णिमा का प्रकाश। जब इन दोनों का मिलन होता है, उसी क्षण पीछे लौटना असम्भव है—प्वाइंट आफ नो रिटर्न है। वह जगह आ गयी जहाँ से वापस नहीं हुआ जा सकता। जिससे आगे नहीं जाया जा सकता और आगे ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

धर्म है - स्वयं जैसा हो जाना !

[ताओ उपनिषद् एवम् कैवल्य उपनिषद् पर भगवान् श्री रजनीश द्वारा दिये गये प्रवचन माला से दो महत्वपूर्ण प्रवचन का संकलन]

एक मित्र ने पूछा है कि क्या रुकने के लिए दौड़ना जरूरी नहीं है ?

जरूरी है । लेकिन आप दौड़ ही रहे हैं । आप काफी दौड़ लिये हैं । लम्बे जन्मों की दौड़ आपके पीछे है, उसका ही आप परिणाम हैं । अब और दौड़ना जरूरी नहीं है । अब रुकना जरूरी है ।

लेकिन हमारा मन खुद को धोखा देने के लिए बहुत तरकीबें निकाल लेता है ।

एक धर्मगुरु ने छोटे बच्चों को बहुत समझाया कि पाप से मुक्त होना हो, तो प्रायश्चित करना चाहिये, प्रार्थना करनी चाहिये, परमात्मा के समक्ष अपना अपराध स्वीकार करना चाहिये, कसम लेनी चाहिये कि दुबारा ऐसा अपराध नहीं करेंगे । बहुत समझाने के बाद उसने बच्चों से पूछा कि पाप से मुक्त होने के लिये क्या जरूरी है ? एक छोटे बच्चे ने कहा कि पाप करना जरूरी है ।

निश्चित ही पाप से मुक्त होने के लिये पाप करना तो जरूरी है ही । लेकिन पाप करने से ही कोई मुक्त नहीं हो जायेगा । पाप करने के बाद कुछ और भी करना होगा । निश्चित ही रुकने के लिये दौड़ना जरूरी है । लेकिन दौड़ने से कोई नहीं रुक जायेगा । और दौड़ तो चल ही रही है । जिसे हम जीवन कहते हैं, वह दौड़ है । इसलिये अपने मन को ऐसा मत समझाना कि मैं रुकने के लिये दौड़ रहा हूं ।

रुकने को हम भविष्य के लिये स्थगित कर सकते हैं कि अभी दौड़ लें काफी, फिर रुकेंगे । लेकिन हम काफी दौड़ लिये हैं । देर

वैसे ही काफी हो चुकी है। यह हो सकता है, हमारा मन अभी दौड़ने से न भरा हो।

मन कभी भरता ही नहीं है। और जो भर जाये, वह मन ही नहीं है। मन तो दौड़ता ही रहेगा। एक दिशा बदलेगा, दूसरी दिशा बदलेगा। एक लक्ष्य बदलेगा, दूसरा लक्ष्य बदलेगा। मन तो दौड़ता ही रहेगा।

दौड़ मात्र गलत है

लेकिन अगर यह दौड़ दुख हो, संताप हो, पीड़ा हो—और है—दौड़ सिवाय दुख के और कुछ हो नहीं सकती। लेकिन हमारे मन की तर्कना यह है कि हम सोचते हैं कि दुख इसलिए है कि हम थोड़ा धीमे दौड़ रहे हैं। जरा जोर से दौड़ें, तो पहुँच जाएँ मंजिल पर। तो दुख क्यों हो? या हम सोचते हैं कि दुख इसलिए है कि दूसरे हमसे तेज दौड़ रहे हैं, वे पहले पहुँच जाते हैं और हम चूक जाते हैं। या हम सोचते हैं कि दौड़ तो बिलकुल ठीक है, लेकिन रास्ता हमने गलत चुन लिया है, जिस पर हम दौड़ रहे हैं। जो ठीक रास्ता चुन लेते हैं, वे पहुँच जाते हैं। या हम सोचते हैं कि दौड़ तो ठीक ही है और रास्ता भी ठीक है, लेकिन जो हम पाना चाहते हैं, विषय हमारी वासना का, शायद वह गलत है। धन को बदल लें धर्म से, संस्कार को बदल लें अध्यात्म से, तो फिर दौड़ पूरी हो सकती है।

नहीं होगी। दौड़ ही गलत है। न तो रास्ते गलत हैं, न दौड़ने वाला गलत है, न दौड़ने का ढंग और गति गलत है और न जिसके लिए हम दौड़ रहे हैं, वह लक्ष्य गलत है। दौड़ ही गलत है।

अगर लाओत्से को ठीक से समझें तो लाओत्से कहता है कि सक्रियता ही भूल है। दौड़ ही गलत है। रुक जाना और विश्राम और निष्क्रियता में डूब जाना ही सही है। इसलिए कोई सही दौड़ नहीं होती। लाओत्से के हिसाब से कोई सही दौड़ नहीं होती। दौड़ मात्र गलत है। रुकना मात्र सही है। कोई रुकना गलत नहीं होता, लाओत्से के हिसाब से कोई रुकना गलत नहीं होता। क्योंकि कोई दौड़ सही नहीं होती। सभी सक्रियाताएं गलत हैं। निष्क्रियता ही परम स्वभाव है।

दूसरे मित्र ने पूछा है कि आप सांसारिक वासना को और आध्यात्मिक वासना को एक ही कह रहे हैं। सांसारिक वासना तो क्षुद्र चीज है। आध्यात्मिक वासना तो बहुत ऊँची, महत्त्व की बात है। और आध्यात्मिक वासना पानी हो, तो सांसारिक वासना छोड़नी ही पड़ती है।

लाओत्से को अगर समझेंगे, तो लाओत्से कहता है कोई वासना सांसारिक नहीं होती, कोई वासना आध्यात्मिक नहीं होती। वासना संसार है। और निर्वासना अध्यात्म है। इसलिए सांसारिक वासना का भी कोई मतलब नहीं होता है। और आध्यात्मिक वासना का भी कोई मतलब नहीं होता। वासना ही संसार है। तो जब तक आप वासना में हैं, तब तक आप संसार में हैं। वह वासना मोक्ष को पाने की हो, तो भी आप सांसारिक हैं। और जब आप वासना में नहीं हैं तब चाहे आप संसार में ही हों, आप मोक्ष में हैं।

इसे ऐसा समझें कि वासना का सम्बन्ध विषयों से, ऑबजेक्ट से नहीं है। वासना का सम्बन्ध क्या आप माँगते हैं, इससे नहीं है; माँगते हैं, इससे है। आप क्या माँगते हैं, यह असंगत है, यह इरिलेवेन्ट है। धन माँगते हैं, धर्म माँगते हैं, यश माँगते हैं, कि मोक्ष माँगते हैं, माँगते हैं जब तक, तब तक आप संसार में हैं। जहाँ आप नहीं माँगते हैं, आप मोक्ष में हैं।

इसलिए मोक्ष माँगा नहीं जा सकता। जो नहीं माँगता है, वह मोक्ष को पा जाता है। मोक्ष की वासना नहीं बन सकती है। जिस की वासना छूट जाती है, वह मुक्त हो जाता है। तो मोक्ष किसी वासना का परिणाम नहीं है। किसी दौड़ की अन्तिम मंजिल नहीं है मोक्ष। किसी भी दौड़ में रुक जाने का नाम मोक्ष है। किसी भी दौड़ में कोई ठहर जाये, वह मुक्त हो गया। तो मोक्ष किसी यात्रा का गन्तव्य नहीं है, अन्त नहीं है। जहां रास्ता समाप्त होता है, वह मंजिल मोक्ष नहीं है। जहाँ दौड़ नहीं रह जाती है, वहीं मोक्ष है। जहाँ भी आप रुक जाएँ, रास्ते पर भी, इसी वक्त रुक जाएँ, वहीं मोक्ष है। जब भी चेतना ठहर जाती है, मोक्ष आ जाता है।

और वासना में चेतना कभी नहीं ठहरती है। वासना का अर्थ

ही है : चेतना दौड़ती ही रहेगी। इसलिए लाओत्से सांसारिक और आध्यात्मिक वासनाएँ नहीं मानता है। इसलिए आध्यात्मिक लोगों को लाओत्से से बड़ी परेशानी होती है। क्योंकि वे अपने मन में मान कर बैठे हैं, मैंने सांसारिक वासना छोड़ दी और ऊँची वासना पकड़ ली है। कोई वासना ऊँची नहीं होती है। कोई जहर ऊँचा नहीं होता है। कोई पाप ऊँचा नहीं होता है। जहर बस जहर है। वासना, वासना है। एक खतरा है, ऊँचा जहर तो नहीं होता, शुद्ध और अशुद्ध तो जहर हो सकता है। मिलावट हो, तो अशुद्ध होता है। मिलावट न हो, तो शुद्ध होता है। संसार की वासना अशुद्ध जहर है। मोक्ष की वासना शुद्ध जहर है।

इससे उन मित्र को परेशानी हुई कि आप आध्यात्मिक वासना को सांसारिक वासना से बुरा कह रहे हैं।

कारण है कहने का। क्योंकि संसार और वासना के साथ तो तालमेल है। संसार में वासना तो संगत है। मोक्ष के साथ वासना का कोई तालमेल नहीं है। बिलकुल असंगत है। संसार और वासना में तो एक संगति है; क्योंकि संसार हो ही नहीं सकता वासना के बिना। लेकिन मोक्ष और वासना में तो कोई लेन-देन नहीं है। इसलिए जो आदमी मोक्ष की वासना में पड़ा है, वह शुद्ध जहर में पड़ा हुआ है। वहाँ कुछ है ही नहीं। एक दफा संसार में दौड़ने वाला संसार को पा भी ले; मोक्ष के लिए दौड़ने वाला मोक्ष को कभी नहीं पा सकता है। धन की तरफ दौड़ने वाला, धन की वासना करने वाला धन को पा ले, इसमें कोई बड़ी आश्चर्य की बात नहीं है। सभी पा लेते हैं। लेकिन मोक्ष की तरफ दौड़ने वाले ने कभी मोक्ष नहीं पाया है।

इसलिए जो आदमी वासना को मोक्ष की तरफ लगाता है, वह तो बहुत खतरनाक काम कर रहा है। वह तो वासना को ऐसी जगह लगा रहा है, जहाँ वह कभी भी सफल नहीं हो सकती है। संसार में तो सफल हो भी सकती है। संसार में वासना सफल भी हो सकती हैं, असफल भी हो सकती है। कोई पा लेता है, कोई नहीं पाता। मोक्ष में वासना की सफलता का कोई उपाय ही नहीं है। क्योंकि

मोक्ष का अर्थ ही निर्वासना है। मोक्ष और वासना में कहीं कोई सम्बन्ध नहीं जुड़ता है।

इसलिए सांसारिक उतनी बड़ी भूल में नहीं है जितना तथा-कथित आध्यात्मिक भूल में है। क्योंकि वह जो खोज रहा है, वह सम्भव है। और आध्यात्मिक जो खोज रहा है, वह असम्भव है। एक आदमी अगर बाजार में बैठकर धन और यश खोज रहा है, तो वह असंभव की तलाश में नहीं है। वह संभव है। लेकिन एक आदमी मंदिर में बैठकर परमात्मा को खोज रहा है, एक आदमी वन में बैठ कर मोक्ष को खोज रहा है, वह असम्भव को खोज रहा है।

असल में परमात्मा खोजा नहीं जाता; जब खोज बन्द हो जाती है तब वह यहीं मौजूद है। खोज के कारण ही वह दिखाई नहीं पड़ता है। जैसे आदमी तेजी से दौड़ रहा हो इस कमरे में और खोज रहा हो। उसकी दौड़ के कारण ही चीज दिखाई न पड़ती हो। उसकी दौड़ इतनी तेज हो कि चीज दिखाई ही न पड़ती हो। जैसे एक आदमी बैलगाड़ी में सफर कर रहा हो, तो आस-पास के दृश्य दिखाई पड़ते हैं। फिर वह हवाई जहाज में सफर कर रहा है, तो डिटेल्स खो जाते हैं। फूल नहीं दिखाई पड़ते, वृक्ष नहीं दिखाई पड़ते; जंगल दिखाई पड़ते हैं। विस्तार खो जाता है सूक्ष्मताएँ खो जाती हैं। फिर एक आदमी रॉकेट में यात्रा करता है, तब जंगल भी खो जाता है। तब कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता है।

जितनी हो जाती है तेज गति, उतनी ही दृष्टि अंधी हो जाती है। तब कुछ दिखाई नहीं पड़ता है। जितनी हो जाती है तेज दौड़ वासना की, उतनी ही आँखें अंधी हो जाती हैं। दौड़ का धुंआ और दौड़ की धूल इतनी भर जाती है कि कुछ नहीं दिखाई पड़ता।

और जिसको हम खोज रहे हैं, वह केवल तभी दिखाई पड़ता है, जब आँखों पर कोई धुंआ न हो, कोई धूल न हो, इतना विश्राम में हो मन कि जरा सी भी चहल-पहल न हो, जरा सी भी तरंग न हो बाधा डालने को, सब हो शून्य, मन भी कोई झील की तरह शांत हो, तत्क्षण उसकी तस्वीर, तत्क्षण उसका प्रतिबिम्ब पड़ जाता है। तत्क्षण वह दिखाई पड़ने लगता है।

लाओत्से कहता है, वासना संसार है। इसलिए कोई वासना आध्यात्मिक नहीं होती है। और जो वासना को अध्यात्म का रंग देते हैं वे अपने को बड़े से बड़ा धोखा दे रहे हैं। सांसारिक क्षम्य हैं। तथाकथित आध्यात्मिक अक्षम्य हैं। क्योंकि उन्होंने संसार की विधि को परमात्मा पर लगाया हुआ है। विधि संसार की है, ढंग संसार का है और आकांक्षा परमात्मा की है। वासना, लोभ सब सांसारिक हैं। और इच्छा परमात्मा की है। हम संसार को परमात्मा की तरफ नहीं मोड़ सकते हैं। हम सांसारिक वृत्तियों को अध्यात्म की तरफ नहीं मोड़ सकते।

सांसारिक वृत्तियाँ विलीन हो जाएँ, तो जो शेष रह जाता है, वही अध्यात्म है।

एक मित्र ने पूछा है : लाओत्से ने जो शुद्ध परम सत्य की चर्चा की है, धारणामात्र को प्रक्षेप माना है और स्वभाव में ले जाने में धारणामात्र से बाधा पड़ती है, इस परिप्रेक्ष्य में क्या धर्म या सत्य सदा हम साधारण लोगों की पहुँच के बाहर ही रहेगा ? और क्या लाओत्से कथित सरल-सहज स्वभाव का आलिंगन अति-दुर्लभ ही बना रहेगा।

साधारण मनुष्य की पकड़ के बिलकुल बाहर नहीं है, जिसको असाधारण होने का भ्रम है, उसकी पकड़ के बाहर है। साधारण आदमी बड़ी दुर्लभ बात है। उसे खोजना बहुत मुश्किल है। असाधारण तो सभी हैं। एक-एक से पूछ कर देखें, सभी असाधारण हैं। ऐसा आदमी कभी आपको मिला है, जो साधारण हो ? और अगर कभी कोई कहता भी है कि मैं साधारण हूँ, तो वह कहता है कि मैं अति-साधारण हूँ। अति साधारण का मतलब है : साधारणों में भी मैं असाधारण हूँ। हर आदमी अपने को असाधारण मानकर चलता है। अपने को साधारण कोई भी मानकर नहीं चलता।

लाओत्से कहता है, साधारण हो जाओ और तुम पा लोगे। तुम्हारा असाधारण होना ही तुम्हारी बाधा है। असाधारणता क्या है हमारी ? कोई आदमी धन ज्यादा कमा लेता है, तो असाधारण है। कोई आदमी ज्ञान ज्यादा इकट्ठा कर लेता है, तो असाधारण

है। कोई आदमी त्याग ज्यादा कर लेता है, तो असाधारण है। कभी आपने खयाल किया है, हमारी असाधारणता हमारे करने की मात्रा पर निर्भर रहती है। तो जो जितना कर लेता है, वह उतना असाधारण हो जाता है।

और लाओत्से कहता है, न करने से पाया जायेगा वह सब। इसलिए असाधारण तो उसे कभी नहीं पा सकते हैं। क्योंकि असाधारण का अर्थ ही यह होता है कि जिन्होंने कुछ किया है। साधारण उसे पा लें, जिन्होंने कुछ भी नहीं किया है। लेकिन साधारण आदमी खोजना अति दुर्लभ है।

यह बड़े मजे की बात है, सबसे साधारण धारणा यही है कि प्रत्येक आदमी अपने को असाधारण मानता है। कहे, न कहे, बताये, न बताये, अपने भीतर हर आदमी मानता है कि वही केन्द्र है सारे विश्व का। हर आदमी अपने को मानता है कि वह अपवाद है, नियम नहीं। हर आदमी अपने को गौरीशंकर का शिखर मानता है और इस शिखर को सिद्ध करने में सक्रिय रहता है। जो सिद्ध नहीं कर पाते हैं, उन्हें बड़ी पीड़ा होती है, बड़ी ग्लानि, बड़ी हीनता होती है।

एक मित्र ने पूछा है कि आत्महीनता, इनफीरियरिटी कम्पलेक्स क्यों पैदा होता है ?

इसलिए पैदा होती है कि आप मानते तो हैं अपने को गौरीशंकर और सिद्ध नहीं कर पाते हैं। आप मानते तो हैं कि जगत् के केन्द्र हैं, लेकिन सिद्ध नहीं कर पाते। फिर हीनता पैदा होती है। हीनता पैदा ही उन्हें होती है, जिनके मन में श्रेष्ठ होने का भाव है। उल्टा लगेगा। लेकिन हमने जीवन को ऐसा ही उल्टा कर लिया है। उसमें सीधी, साफ बातें कहनी हों, तो उलटी मालूम पड़ती हैं।

जिस आदमी को भी श्रेष्ठ होने का भाव है, उसे हीनता का बोध पैदा हो जाएगा। उसे लगेगा कि मैं कुछ भी नहीं हूं, क्योंकि मानता है वह इतना अपने को और उतना सिद्ध नहीं कर पाता। फिर पीड़ा पकड़ती है मन को कि मैं कुछ भी न कर पाया।

एक मित्र ने पूछा कि हमें आत्मविश्वास नहीं है, वह कैसे पैदा हो ?

पैदा करना ही मत। आत्मविश्वास पैदा करने का मतलब ही क्या होता है ? मैं कुछ हूँ, मैं कुछ करके दिखा दूँ। आत्मविश्वास का मतलब यह होता है कि मैं साधारण नहीं हूँ, असाधारण हूँ और सिर्फ हूँ ही नहीं, सिद्ध भी कर सकता हूँ।

सभी पागल आत्मविश्वासी होते हैं। पागलों के आत्मविश्वास को डिगाना बहुत मुश्किल है। अगर एक पागल अपने को नेपोलियन मानता है, तो सारी दुनिया भी उसको हिला नहीं सकती कि तुम नेपोलियन नहीं हो। उसका भरोसा अपने पर पक्का है। आत्मविश्वास की जरूरत क्या है ? क्यों परेशानी होती है कि आत्मविश्वास नहीं है।

क्योंकि तुलना है मन में कि दूसरा आदमी अपने पर ज्यादा विश्वास करता है, वह सफल हो रहा है। मैं अपने पर विश्वास नहीं कर पाता, मैं सफल नहीं हो रहा हूँ। वह इतना कमा रहा है और मैं इतना कम कमा रहा हूँ। वह सीढ़ियाँ चढ़ता जा रहा है, राजधानी निकट आती जा रही है; मैं बिलकुल पीछे पड़ा हुआ हूँ। पिछड़ गया हूं। आत्मविश्वास कैसे पैदा हो ? कैसे अपने को बलवान बनाऊं ? क्या मतलब हुआ ?

आत्मविश्वास का मतलब हुआ कि आप दूसरे से अपनी तुलना कर रहे हैं और इसलिए परेशान हो रहे हैं। आप आप हैं, दूसरा दूसरा है। अगर आप जमीन पर अकेले होते, तो क्या कभी आपको पता चलता कि आत्मविश्वास की कमी है ? अगर आप अकेले होते पृथ्वी पर, तो क्या आपको पता चलता कि मुझमें हीनता का भाव है, इनफीरियरीटी कम्पलेक्स है ? कुछ भी पता न चलता। तब आप साधारण होते।

साधारण का मतलब ? आपको यह भी पता न चलता कि आप साधारण हैं। सिर्फ होते हैं। जिसको यह भी पता चलता है कि मैं साधारण हूं, उसने असाधारण होना शुरू कर दिया। आप हैं, इतना काफी है। आत्मविश्वास की ज़रूरत नहीं, आत्मा पर्याप्त है। आप हैं। क्यों तौलते हैं दूसरे से।

फिर दिक्कतें खड़ी होंगी। किसी की नाक आपसे बेहतर है,

दीनता पैदा हो जायेगी। किसी की आँख आपसे बेहतर है, दीनता पैदा हो जायेगी। किसी की लम्बाई ज्यादा है, तो दीनता पैदा हो जाएगी। किसी ने मकान बड़ा बना लिया, फिर दीनता पैदा हो जायेगी। फिर हजार दीनताएं पैदा हो जाएँगी। फिर जितने लोग आपको दिखाई पड़ेंगे, उतनी दीनताएँ आपके भीतर पैदा हो जाएंगी। उनका जोड़ इकट्ठा हो जायेगा।

और आपकी मान्यता है कि आप हैं गौरीशकर। अब बड़ी कठिनाई खड़ी होगी। आप हैं जगत् के सबसे बड़े शिखर। और हर आदमी जो मिलता है वह बता जाता है कि आप एक खाई हैं, एक खड्ड हैं। आपकी यह खड्डे की स्थिति चारों तरफ है। और आपका यह भाव कि मैं हूं गौरीशंकर का शिखर, इन दोनों के बीच जो खिचाव पैदा होगा, वही आदमी की बीमारी है। वही रोग है, जिसमें हर आदमी सड़ जाता है, मर जाता है, मिट जाता है।

दूसरे से तौलते क्यों हैं?

बोकोजू से किसी ने आकर पूछा है कि मैं शान्त नहीं हूं, आप शान्त हैं। मैं अशान्त हूं, आप शान्त हैं। मैं कैसे आप जैसा हो जाऊँ? बोकोजू ने कहा, अगर मैं भी किसी से पूछता कि मैं कैसे आप-जैसा हो जाऊँ, तो कभी का अशान्त हो गया होता। एक ही तरकीब है मेरी कि मैंने कभी किसी से पूछा नहीं कि मैं तुम जैसा कैसे हो जाऊँ? मैं जैसा हूं, हूँ। तुम जैसे हो, तुम हो। इनमें मैंने और कुछ और बदलाहट नहीं चाही।

उस आदमी ने कहा कि मुझे ऊँची बातों की जरूरत नहीं है। मुझे सीधा रास्ता बता दें। आप हैं शान्त, मैं हूँ अशान्त, मैं शान्त कैसे हो जाऊँ?

बोकोजू ने कहा कि जरा तू रुक, जरा लोग चले जाएँ, तो तुझे बताऊँ। फिर लोग आये, गए, दिन बीत गया, साँझ होने लगी। उस आदमी ने कहा कि अब तो बहुत देर भी हो गई, अब जल्दी मुझे बता दो। बोकोजू उसे बाहर लेकर आया और उसने कहा कि देख, मेरे मकान के पीछे एक छोटा वृक्ष है और एक बड़ा वृक्ष है। वर्षों हो गए मुझे इस मकान में रहते। मैंने कभी छोटे वृक्ष को बड़े

वृक्ष से पूछते नहीं देखा कि तू बड़ा है, मैं छोटा हूं, मैं बड़ा कैसे हो जाऊँ ? इसलिए बड़ी शान्ति है। बड़ा-बड़ा है, होगा बड़ा। और छोटा-छोटा है।

और यह भी हम आदमी सोचते हैं कि यह छोटा है और यह बड़ा है। छोटे को छोटा होने का पता नहीं है, बड़े को बड़ा होने का पता नहीं है। इसलिए बहुत सन्नाटा है; कभी कोई विवाद नहीं है, कोई संघर्ष नहीं, कोई उपद्रव नहीं। मैं मैं हूं, तू तू है। और तू छोड़ दे ख्याल कि तू दूसरे जैसा कैसे हो जाए।

वह आदमी बोला कि कैसे छोड़ दूं ? मैं बहुत अशान्त हूं। बोकोजू ने कहा कि तेरी अशान्ति का कारण ही मैं तुझे बता रहा हूं; दूसरे से जो अपने को तौलेगा, वह अशान्त रहेगा ही।

लाओत्से कहता है कि अपने को स्वीकार कर लो। अस्वीकृति में ही सारा उपद्रव है। और हममें से कोई भी अपने को स्वीकार नहीं करता है, कोई नहीं। और जो जितना अपने को अस्वीकार करता है, वह उतना बड़ा महात्मा मालूम होता है। हममें से कोई भी अपने को स्वीकार नहीं करता। हम सब अपने दुश्मन हैं। हमारा बस चले, तो हम सब काट पीट कर अलग कर दें अपने में से।

हम सबको दूसरे स्वीकार हैं। लेकिन स्वयं की ही कोई स्वीकृति नहीं है। और जिनको हम स्वीकार कर रहे हैं, जरा उनकी तरफ झाँककर देखें, वे भी अपने को स्वीकार नहीं किये हुए हैं। केवल वे दूसरों को स्वीकार करते हैं। अगर एक-एक आदमी का मन खोल-कर सामने रखा जा सके, तो एक ही बीमारी मिलेगी कि कोई अपने को स्वीकार नहीं करता। कोई भी।

और जो अपने को स्वीकार करता है, उसकी फिर कोई बीमारी नहीं है। क्योंकि जहाँ तुलना नहीं है वहाँ दीनता कैसी, हीनता कैसी, श्रेष्ठता कैसी ? वहाँ असाधारण कौन और साधारण कौन ?

वह तो अच्छा है कि हम आदमियों से तुलना करते हैं। नहीं तो गुलाब का फूल खिला है, हम छाती पीटें कि हममें अब तक एक फूल भी नहीं खिला, बड़े हीन हो गये। आकाश में चाँद निकला है, हम आँसू बहा रहे हैं कि ऐसी रोशनी कभी हमारे चेहरे से न

निकली।

वह तो अच्छा है कि हमने अपनी बीमारी आदमी तक ही सीमित रखी है। अगर हम फैला लें, तो हमें कोई भी दीन-हीन कर जायेगा। छोटी सी तितली उड़ गई है, उसके पंखों का रंग हमें हीन कर जायेगा। एक हिरण दौड़ रहा होगा और उसकी गति और उसकी चमक हमें दीन कर जायेगी। सड़क के किनारे छोटा-सा पत्थर चमक रहा होगा वर्षा में और उसकी चमक हमें फीका कर जायेगी। अच्छा है कि हम आदमियों में तौलते हैं।

लेकिन, तौलेंगे, तो दीन हो जाएँगे। दोहरी बीमारी है। खुद को माने बैठे हैं शिखर और फिर तौलते हैं, तो दीनता पैदा होती है। तो दो स्थितियाँ तनाव की बन जाती हैं। गड्ढ दिखाई पड़ता है वस्तुतः और कल्पना में दिखाई पड़ता है शिखर। दोनों के बीच कहीं कोई तालमेल नहीं बैठता है। और जीवन इसी में टूट जाता है।

लाओत्से कहेगा कि साधारण होओ। इससे शुभ और कुछ भी नहीं है। स्वीकार कर लो अपनी साधारणता। लेकिन हर कोई हमें समझा रहा है, कुछ बनकर दिखाओ, यह बन जाओ, वह बन जाओ, ऐसे बन जाओ, वैसे बन जाओ। बचपन से माँ-बाप पीछे पड़े हैं, कुछ बनकर दिखाओ। शिक्षक पीछे पड़े हैं, कुछ बनकर दिखाओ। क्या साधारण ही रह जाओगे संसार में आये हो तो कुछ करके दिखाओ।

बड़ी आश्चर्य की बात है, जिन्होंने करके दिखाया है, वे कब्रों में पड़े हैं वैसे ही। जिन्होंने नहीं करके दिखाया है, वे भी विश्राम कर रहे हैं कब्रों में। और कब्रें कोई फर्क नहीं करतीं कि तुमने कुछ करके दिखाया था या कुछ करके नहीं दिखाया था। और करके जिन्होंने दिखाया है, क्या है उसका परिणाम ? सपने में जैसे हम कुछ कर लें, ऐसा ही जीवन में कुछ करना है। सुबह जागकर सब मिट जाता है। पानी पर खींची गई रेखाओं-सा सब खो जाता है। लेकिन हर एक पीछे पड़ा है कि कुछ करके दिखाओ। क्योंकि करने को हम मानते हैं कोई गुण।

लाओत्से कहता है कि न करना गुण है। इसका मतलब यह नहीं है कि लाओत्से कहता है कि कुछ करो मत, इसका मतलब नहीं

है कि रोटी कमाने मत जाओ, इसका यह मतलब नहीं है कि नौकरी मत करो, इसका यह मतलब नहीं है कि हाथ-पैर मत हिलाओ। लाओत्से कहता है कि न करने में ठहरे रहो। न करना तुम्हारा केन्द्र रहे। और तुम्हारा जो करना निकले, वह करने की दौड़ से नहीं, न करने की स्वीकृति से निकले। तो तुम्हारी वासनाएँ अपने आप कम होंगी। आवश्यकताएँ रह जाएँगी, वासनाएँ खो जाएँगी। जरूरतें रह जाएँगी। और आदमी की जरूरतें इतनी कम हैं कि जिसका कोई हिसाब नहीं है। और आदमी की वासना इतनी ज्यादा है कि जिसका भी कोई अन्त नहीं है।

लाओत्से कहता है, अगर तुम साधारण अपने स्वभाव में जिओ, तो तुम उतना कर लोगे, जितनी तुम्हारी जरूरत है। आदमी कुछ ऐसा कमजोर नहीं है। पशु-पक्षी भी कर लेते हैं। वे भी अपने लिए जुटा लेते हैं। लेकिन पशु करने से पीड़ित नहीं हैं। करते जरूर हैं, लेकिन करने से पीड़ित नहीं हैं। कोई पशु कुछ होने की कोशिश में नहीं लगा है। सभी मोर एक जैसे मोर हैं। सभी तोते एक जैसे तोते हैं। अपना खा लेते हैं, पी लेते हैं, सो लेते हैं, गीत गा लेते हैं, नाच लेते हैं, आकाश में उड़ लेते हैं। कोई साधारण नहीं है, कोई असाधारण नहीं। कोई छोटा नहीं है, कोई बड़ा नहीं। करते तो वे भी हैं, लेकिन करने में कोई दौड़ नहीं है। और करने के पीछे सब कुछ लगा देने का कोई पागलपन भी नहीं है।

आदमी भर पागल है। आदमी का करना महत्वपूर्ण हो गया है उसके विश्राम से भी ज्यादा। हम करते हैं किसलिए ? आदमी करता इसलिए है कि कभी विश्राम कर सके। और अन्त यह होता है कि विश्राम का मौका ही नहीं आता। और करते-करते ही समाप्त हो जाता है। लक्ष्य क्या है ?

डायजनीज विश्राम कर रहा है अपनी रेत में पड़ा हुआ, नग्न है। सिकन्दर उससे मिलने गया है और सिकन्दर कहता है कि इतनी मौज, इतना आनन्द ! फिर भी मैं पूछता हूं कि मैं तुम्हारे लिए कुछ कर सकूँ, तो मुझे कहो। डायजनीज ने कहा कि थोड़ा हट कर खड़े हो जाओ। सूरज की रोशनी आती थी तुम बाधा बन गये हो। और

ज्यादा तुम क्या कर सकोगे ? हम बड़े मजे में थे, रोशनी पड़ती थी सुबह की ताजी, तुम जरा बीच में आ गये। जरा हट जाओ।

✓सिकन्दर को बड़ी मुश्किल मालूम पड़ी। वह सोचता था कि कुछ करके दिखाएगा डायजनीज को। कर सकता था, धन के अम्बार लगा सकता था। और डायजनीज ने क्या माँगा ? सिकन्दर ने कहा कि डायजनीज, तुझे पता नहीं कि मैं कौन हूँ ? मैं हूं महान सिकन्दर, कुछ मांग लो। डायजनीज ने कहा कि तुम्हारी बड़ी कृपा है कि तुम हट गये। इससे बड़ी और क्या बात हो सकती है कि मेरे और सूरज के बीच अब और कोई भी नहीं है।

✓यह आवश्यकता वाला आदमी है, वासनावाला नहीं। इतनी आवश्यकता थी, इतनी जरूरत थी कि बीच से हट जाओ। बात खतम हो गई। यह पक्षियों जैसे जी रहा है। उतना ही निसर्ग में, उतनी ही सरलता में।

सिकन्दर से डायजनीज पूछता है : क्या इरादे हैं ? सिकन्दर कहता है कि दुनिया जीतना चाहता हूँ, सारी दुनिया जीतना चाहता हूँ। डायजनीज पूछता है, फिर क्या करोगे ? सिकन्दर कहता है कि फिर विश्राम करूँगा। और डायजनीज खूब खिलखिलाकर हँसता है। सिकन्दर पूछता है, क्यों हँसते हो ?

डायजनीज ने कहा : हम अभी विश्राम कर रहे हैं। विश्राम करने के लिए दुनिया जीतना हमें कोई समझ में नहीं आया। अगर विश्राम ही लक्ष्य है, तो डायजनीज अभी विश्राम कर रहा है। और दुनिया जीतने का इससे कोई सम्बन्ध नहीं है। लेकिन सिकन्दर, तुम भूल में हो, विश्राम तुम कर न सकोगे। क्योंकि तुम्हें गणित का ही पता नहीं है। जिसे विश्राम करना होगा, वह दुनिया जीतने क्यों जायेगा ? क्योंकि अगर दुनिया जीत कर ही विश्राम हो सकता होता, तो डायजनीज विश्राम कैसे करता ? कोई संबंध नहीं है, कोई कार्य-कारण का सम्बन्ध नहीं है। और मैं तुमसे कहता हूँ कि तुम कभी विश्राम न कर सकोगे। और तुम सिर्फ भ्रम में हो कि तुम विश्राम करोगे। तुम मर जाओगे—ऐसे दौड़ते-दौड़ते।

और सिकन्दर ऐसे ही दौड़ते-दौड़ते मर गया।

हम सब भी सोचते हैं, कभी विश्राम करेंगे। सोचते हैं, ये ये शर्तें पूरी हो जाएँ, तो विश्राम करेंगे। ऐसा भी हो सकता है वे शर्तें पूरी हो जाएँ। लेकिन तब तक काम करना आपके लिए ऐसी विक्षिप्तता हो चुकी होगी कि जिस दिन आपका बिस्तर बंध कर तैयार होगा, उस दिन तक आपकी नींद खो गई होगी। और जब तक आप भोजन जुटा पाएँगे, तब तक भूख मर चुकी होगी। क्योंकि भोजन जुटाने में आदमी भूख की कुर्बानी चढ़ा देता है। और अच्छा बिस्तर जुटाने में आदमी नींद को समाप्त कर डालता है; नींद को चढ़ा देता है बलिवेदी पर कि एक अच्छा बिस्तर मिल जाये। और अच्छा बिस्तर इसलिए मिल जाये कि उस पर सो सकें। और फिर बिस्तर मिल जाता है, तब नींद नहीं होती। और जब भोजन मिल जाता है, तब भूख नहीं होती।

इस दुनिया में दो तरह के दरिद्र लोग हैं। एक, जिनके पास भूख है, भोजन नहीं है। दूसरे, जिनके पास भोजन है, भूख नहीं है। बर्नाड शॉ ने कहा है कि दुनिया में दो जातियाँ हैं—हैव्स और हैव्स नॉट्स। गलत है वह बात दुनिया में दो जातियाँ हैं—हैव नॉट्स, एण्ड हैव नॉट्स। क्योंकि किसी के पास भोजन है, तो भूख नहीं है। किसी के पास भूख है, तो भोजन नहीं है। और ध्यान रहे, इन दोनों में दरिद्र वह ज्यादा है, जिसके पास भोजन है और भूख नहीं। क्योंकि भोजन बाहरी चीज है, भूख भीतरी चीज है। और भोजन तो माँगा भी जा सकता है, चुराया भी जा सकता है। भूख माँगी भी नहीं जा सकती, चुराई भी नहीं जा सकती। जिसके पास भोजन है, भूख नहीं, उसके पास भीतर कुछ मर गया और बाहर इकट्ठा हो गया है। और मजा यह है कि यह बाहर इकट्ठा उसने किया ही इसलिए था कि वह भीतर जो है उसका आनन्द ले सके। लेकिन उसे ही बेच डाला बाजार में, जिसे बचाने निकले थे, उसे बेच डाला।

और आदमी निरन्तर इस भूल से गुजर रहा है।

आवश्यकता रह जायेगी, अगर आदमी निष्क्रियता में प्रवेश कर जाये। सक्रियता नहीं खो जायेगी, लेकिन सक्रियता आवश्यकता के

अनुपात में हो जायेगी। उससे ज्यादा नहीं। और यह जो निष्क्रिय को भीतर जान लेनेवाला आदमी है, यह साधारण हो जायेगा, ये विक्षप्तता की बातें छोड़ देगा कि मैं सिकन्दर हो जाऊँ, कि नेपोलियन हो जाऊँ, कि हिटलर हो जाऊँ, या बुद्ध हो जाऊँ, महावीर हो जाऊँ। नहीं, यह कुछ भी नहीं होना चाहेगा। यह जो है, वह काफी है।

मार्टिन लूथर ने मरते वक्त कहा है कि परमात्मा से मिलने जा रहा हूँ। जिन्दगी भर मैंने कोशिश की कि जीसस क्राइस्ट हो जाऊँ। और अब मुझे ख्याल आता है कि परमात्मा यह मुझसे नहीं पूछेगा कि तुम जीसस क्राइस्ट क्यों न हो सके? वह मुझसे पूछेगा कि तुम मार्टिन लूथर क्यों नहीं हो सके। जीसस क्राइस्ट से क्या लेना-देना था? जीसस क्राइस्ट जाने उनका होना। मैं था लूथर, तो अब मुझे ख्याल आता है कि जिन्दगी तो मैंने जीसस जैसे होने में लगायी। परमात्मा मुझसे पूछेगा कि तुम लूथर क्यों न हो सके? जो तुम हो सकते थे, वह तुम क्यों न हो सके? और जो तुम थे ही नहीं, उस होने में तुमने समय क्यों व्यतीत किया?

परमात्मा किसी से भी नहीं पूछेगा कि तुम बुद्ध क्यों नहीं बने, महावीर क्यों नहीं बने, कृष्ण क्यों नहीं बने? वह यही पूछेगा कि तुम जो हो सकते थे, वह भी तुम क्यों न हो सके। नहीं हो पाते हम क्योंकि हम कुछ और होने में लगे हैं। जो हम हो सकते हैं, वह हम हो नहीं पाते। और जो हम हो नहीं सकते हैं वह हम होने में लगे रहते हैं। ऐसे जीवन चूक जाता है। सारा अवसर खो जाता है। फिर दीनता पैदा होगी, इनफीरियरिटि कम्पलेक्स पैदा होगी, आत्मग्लानि होगी। लगेगा, मैं कुछ भी नहीं हूँ। उदासी घेर लेगी, विषाद पकड़ लेगा। और जिन्दगी एक बोझ हो जाएगी, एक नृत्य नहीं रह जाएगी।

लाओत्से जो कह रहा है, वह एक नृत्य का जीवन है, लेकिन सहज। और जब मैं कहता हूँ कि लाओत्से जो कह रहा है, वह नृत्य का जीवन है, तो वह यह नहीं कह रहा है कि तुम 'निजिंस्की' के जैसे नाचो, कि तुम कोई बहुत बड़े नृत्यकार, कोई 'उदयशंकर' हो जाओ।

तुम नाच सको आनन्द से, यह काफी है। टेढ़ा-मेढ़ा ही सही तुम्हारा नाच, वह तुम्हारा हो, ऑथेन्टिक हो, प्रमाणिक हो, जरूरत नहीं है कि तुम्हारे पास कोई 'तानसेन' के स्वर हों। तुम्हारा अपना स्वर हो, अपने हृदय से उठा हुआ। न हो राग उसमें, न हो काव्य उसमें, कुछ भी न हो, बस एक अस्तित्व की माँग है कि वह तुम्हारा हो, प्रमाणिक रूप से तुम्हारा हो।

और परमात्मा के सारे आनन्द की वर्षा उस पर हो जाती है जो प्रमाणिक रूप से स्वयं है।

लाओत्से की सारी चिन्तना असाधारण व्यक्ति के लिए नहीं है। और दूसरे धार्मिक परम्पराओं में असाधारण व्यक्ति का बड़ा मूल्य है। लाओत्से के लिए तो साधारण व्यक्ति का ही मूल्य है। ऐसे हो जाओ, जैसे हो ही नहीं। तुम्हारा पता भी किसी को क्यों चले? तो यह प्रश्न सार्थक मालूम पड़ सकता है तथाकथित धार्मिक चिन्तनाओं के संदर्भ में, जहाँ कहा जाता है कि यह हो जाओ, यह हो जाओ। व्यर्थ है तुम्हारा जीवन, तुम्हारा जीवन सदा व्यर्थ है, किसी और का जीवन सार्थक है, तुम वैस हो जाओ।

लाओत्से कहता है कि तुम सार्थकता हो स्वयं। तुम हो, यह काफी है कि परमात्मा ने तुम्हें अंगीकार किया है। तुम हो, यह पर्याप्त है कि परमात्मा तुम्हारे पीछे खड़ा है, उतना ही जितना बुद्ध के, उतना ही जितना लाओत्से के। तुम्हें उतनी ही सांसें देता है, जरा सी भी कंजूसी नहीं करता। तुम्हें उतनी ही हृदय की धड़कनें देता है। जरा सा भी भेद-भाव नहीं है। तुम पर से सूरज जब गुजरता है, तब ऐसा नहीं है कि अपनी किरणें सिकोड़ लेता है। और तुम्हारे पास से हवा जब गुजरती है, तब ऐसा नहीं है कि संकोच कर लेती कि कहाँ एक छोटे से आदमी के पास से गुजरना पड़ रहा है।

पूरा अस्तित्व तुम्हें उसी तरह अंगीकार करता है, जैसे किसी और को। लेकिन तुम ही अपने को अंगीकार नहीं करते हो। तब अस्तित्व भी क्या कर सकता है?

लाओत्से कहता है, असाधारण-साधारण की बात ही बकवास है। तुलना ही व्यर्थ है, कम्पेरिजन ही अर्थहीन है। कोई ऐसा है, कोई

वैसा है, इनमें नीचे-ऊपर कोई नहीं है, भिन्नताएँ हैं, श्रेष्ठताएँ नहीं हैं जगत में। इसे थोड़ा ठीक से समझ लें। जगत् में श्रेष्ठताएँ और हीनताएँ नहीं हैं। जगत् में भिन्नताएँ हैं। बुद्ध तुमसे भिन्न हैं। ऊँच-नीच की बात बिल्कुल फिजूल है। और अगर वे खिल सके हैं फूल की भाँति, तो इसलिए की उनकी किसी से कोई तुलना उनके मन में नहीं है। वे किसी से ऊँचे नहीं होना चाहते हैं, वे किसी से नीचे नहीं होना चाहते। दूसरा उनकी दृष्टि में ही नहीं है। उन्होंने अपने को खोज लिया है।

तुम्हारी तकलीफ यही है कि तुम्हें बुद्ध परेशान कर रहे हैं, महावीर परेशान कर रहे हैं, कृष्ण परेशान कर रहे हैं, क्राइस्ट प शान कर रहे हैं। कैसे मैं कुछ और हो जाऊँ, जो मैं नहीं हूं—यही नर्क है। कैसे मैं वही हो जाऊं, जो मैं हूँ—यही स्वर्ग है। और जिस दिन यह ख्याल ही मिट जाता है, यह होने की बात, बिकमिंग की बात ही मिट जाती है कि मैं कुछ हो जाऊँ। जो हूं, हूँ, जिस दिन यह बीइंग रह जाती है, उस दिन मोक्ष है।

लाओत्से तो साधारण आदमी के बड़े पक्ष में है। वह महामानवों के पक्ष में नहीं है। वह मनुष्य के पक्ष में है, विशेषण-हीन मनुष्य के पक्ष में है, नोबडी के पक्ष में है। जिसके कोई विशेषण नहीं है, उसके पक्ष में है।

एक मित्र ने पूछा है कि हमारी सारी शिक्षा, सभ्यता और संस्कृति स्वभाव पर आवरण बन जाती हैं। तो क्या ऐसी शिक्षा नहीं हो सकती कि हमारे स्वभाव पर आवरण न बने, वरन् उसके दृष्टि-कोण में सहयोगी हो जाए ?

शिक्षा का अर्थ ही होता है कि जो बाहर से दी जाए। जिसे कोई और दे। संस्कार का अर्थ होता है कि जो बाहर से डाला जाए, कोई डाले। तो गहरे अर्थ में सभी शिक्षा और सभी संस्कार स्वभाव पर आवरण बनेंगे। इतना ही हो सकता है कि कुछ आवरण बहुत जटिल हों, कुछ आवरण कम जटिल हों; इतना ही हो सकता है कि कुछ आवरण लोहे के बन जाएँ और कुछ आवरण हवा के आवरण हों। आवरण तो होंगे ही।

इस बात को ठीक से समझ लें। शिक्षा संसार के लिए जरूरी है। अगर संसार में जीना है, संसार में चलना है, वासना में दौड़ना है, सक्रिय होना है, तो शिक्षा जरूरी है। शिक्षा सक्रियता का प्रबन्ध है। इसलिए जो जितना शिक्षित है, वह उतना सक्रियता के जगत् में सफल होता हुआ मालूम पड़ता है। जो जितना अशिक्षित है, उतने सक्रियता के द्वार दरवाजे उसके लिए बन्द हो जाते हैं। शिक्षा सक्रियता की टेक्नालाजी है।

लेकिन स्वभाव में जाने के लिए किसी शिक्षा की कोई जरूरत नहीं है। स्वभाव में जाने के लिए तो जो भी शिक्षा मिली हो, उसे छोड़ने का साहस चाहिए। इसे हम ऐसा समझें, इस प्रश्न को हम ऐसा रखें, तो ख्याल में आ जाएगा।

लाओत्से कहता है कि वस्त्र मनुष्य की नग्नता को छिपा लेते हैं। हम पूछ सकते हैं, माना कि वस्त्र नग्नता को छिपा लेते हैं, लेकिन क्या ऐसे कोई वस्त्र नहीं हो सकते हैं जो नग्नता को न छिपाएँ? वस्त्र तो कैसे भी हों, नग्नता को छिपाएँगे ही, छिपाने की मात्रा में फर्क हो सकता है। काँच के वस्त्र बनाए जा सकते हैं ट्रांसपैरेन्ट वे बहुत कम छिपाएँगे। लेकिन फिर भी छिपाएँगे। और नग्न किसी को होना हो, तो कैसे भी वस्त्र हों, उसे उतार कर रख देने होंगे, चाहे वे लोहे के हों, चाहे वे काँच के हों, चाहे उनके पार दिखाई पड़ता हो और चाहे पार दिखाई न पड़ता हो। वस्त्र तो हटा ही देने होंगे, तो ही नग्नता प्रकट होगी।

स्वभाव हमारी आन्तरिक नग्नता है। संस्कृति, सभ्यता, शिक्षा हमारे वस्त्र हैं। उन वस्त्रों में हम बच जाते हैं। धीरे-धीरे वस्त्र इतने उपयोगी सिद्ध होते हैं कि हम भूल ही जाते हैं कि वस्त्रों के अलावा भी हमारा कोई होना है। भीतर की बात तो हम छोड़ दें, बाहर भी ऐसा हो जाता है। अगर आप भी अपने आपको रास्ते में नग्न मिल जाएँ, तो पहचान न पाएँगे। या कि क्या आप सोचते हैं, पहचान लेंगे? अचानक एक दिन आप अपने दरवाजे से निकलें और आप ही अपने को दरवाजे पर नग्न मिल जाएँ। आप नहीं पहचान पाएँगे। हम अपने को भी अपने वस्त्रों से ही पहचानते हैं।

जर्मन कन्सेन्ट्रेशन कैम्पों में बड़ी हैरानी अनेक लोगों को अनुभव हुई। क्योंकि जब नाजी लोगों को पकड़ते थे, तब पहला काम यह करते थे कि उनके सारे वस्त्र, उनके सब सामान छीन लेते थे। फिर उनके सिर, दाढ़ी, मूछ सब घोंट देते थे। तो एक मनसविद् फ्रैंकेल ने अपना अनुभव लिखा है। वह एक बड़ा डाक्टर है, बड़ा मनसविद् है। वह भी पकड़ा गया, क्योंकि यहूदी है। उसके साथ पाँच सौ लोग पकड़े गए, उसके ही गांव के लोग थे, सब परिचित थे, कोई जज था, कोई चिकित्सक था, कोई शिक्षक था, कोई-कोई था। उन पांच सौ ही लोगों के सिर घुटा दिये गये, उनके सब वस्त्र, कपड़े सब निकाल लिये गये, चश्में, घड़ी सब सामान अलग कर लिये गये। फ्रैंकेल ने लिखा कि जब हम पांच सौ ही नग्न खड़े हुए, तो कोई किसी को पहचान न पाये। समझ में न आया कि कौन लोग खड़े हैं। और फ्रैंकेल ने लिखा है कि जब मैं स्वयं आइने के सामने खड़ा हुआ, सिर घुटा हुआ, नग्न, तो मुझे भरोसा नहीं आया कि यह मैं हूँ।

आपकी अपनी जो आइडेन्टिटी है, आपका अपना जो तादात्म्य है, वह आपके वस्त्र हैं, बाहर भी। जरा देखें एक मजिस्ट्रेट को और एक चोर को नग्न खड़ा करके और फिर बता दें कि कौन मजिस्ट्रेट है और कौन चोर है। हो सकता है कि नग्न चोर ही शान से खड़ा हो और मजिस्ट्रेट चोर मालूम पड़ता हो। सारी गरिमा खो जाए मजिस्ट्रेट की; क्योंकि वह सारी गरिमा वस्त्रों की है। इसलिए वस्त्रों का हमारे लिए इतना मूल्य है। एक सम्राट के वस्त्र छीन लें, उसका सब छिन जाता है।

बाहर ही ऐसा होता, तो ठीक था, भीतर भी ऐसा ही है। भीतर के वस्त्र महीन हैं, सूक्ष्म हैं। पता नहीं चलता है। शिक्षा है। आपकी शिक्षा छीन लें, तो आप और आपके नौकर में कहीं कोई फर्क रह जाएगा? आप दस पाँच साल विश्वविद्यालय में ज्यादा देर बैठे हैं, वह जरा कम देर बैठा है पर उसने कितना फर्क ला दिया है। आप सुसंस्कृत हैं, वह असभ्य है। आप जहां जाएँगे, लोग नमस्कार करेंगे। और वह जहाँ से भी गुजरेगा, लोग उसे देखेंगे भी नहीं।

कभी आपने यह ख्याल किया है कि आपके कमरे में एक मेहमान

आये, तो एक आदमी भीतर आया। लेकिन जब आपका नौकर इस कमरे में आता है, जाता है, तब आपको पता भी नहीं चलता है कि कोई आदमी भीतर आया और गया। नौकर कोई आदमी थोड़ा ही है! नौकर कोई आदमी नहीं है। फर्क क्या है आपकी आदमियत में और उसकी आदमियत में? इतना ही कि आप स्कूल के बेंचों पर थोड़ी देर ज्यादा बैठे। इतना ही कि आपके पास जो वस्त्र हैं अपने को छिपाने के वे जरा कीमती हैं। आपकी नग्नता जरा कीमती वस्त्रों में छिपी है और उनकी नग्नता जरा दरिद्र वस्त्रों में छिपी है।

लाओत्से कहता है, सभी शिक्षा वस्त्र निर्मित करती हैं—भीतर आत्मा पर, स्वभाव पर। सभी संस्कार जो मैं हूँ, उसको दबा देते हैं। वह कहता है कि इन सभी संस्कारों को छोड़कर स्वयं को जाना जाता है। निश्चित ही ऐसी संस्कृति हो सकती है, जो इतने जोर से दबा दे कि छुटकारे का उपाय न छोड़े। ऐसी भी संस्कृति हो सकती है, जो साथ-साथ छुटकारा भी सिखाए। आपको ऐसे भी कपड़े पहनाए जा सकते हैं, जिनको निकालना मुश्किल हो जाए। और ऐसे कपड़े भी पहनाए जा सकते हैं कि आप क्षण में उनके बाहर निकल जाएँ।

जो संस्कृति ऐसी शिक्षा देती हो, और ऐसे संस्कार देती हो, जिनके बाहर निकलना जरा भी मुसीबत न हो, वह संस्कृति धार्मिक है। जो संस्कृति ऐसे वस्त्र देती है कि वे वस्त्र नहीं, चमड़ी की तरह पकड़ जाते हैं, छोड़ते नहीं फिर, छूटना मुश्किल हो जाता है, उनके बाहर निकलने में बड़ी अड़चन हो जाती है, वह संस्कृति अधार्मिक है। धार्मिक संस्कृति वह है, जो स्वयं से छूटने का उपाय भी देती है।

धार्मिक संस्कृति वह है, जो आपको संस्कार भी देती है और संस्कार के बाहर जाने का मार्ग भी देती है। लेकिन संस्कार तो सभी बांधेंगे, साथ में बाहर निकलने का मार्ग भी होना चाहिए। अगर हो, तो संस्कृति धार्मिक हो जाती है।

एक मित्र ने पूछा है कि पूर्व-धारणा बनाकर स्वयं में प्रवेश करने पर सरल स्व का उद्घाटन संभव नहीं है। बतायें कि पूर्व-धारणा के बिना स्व बोध के प्रति प्रवृत्ति संभव है क्या? क्या जिज्ञासा का

मूल कारण वस्तु-तत्व का पूर्व-ज्ञान नहीं है ?

इसको ही कहते हैं पूर्व धारणा। यह प्रश्न पूर्व-धारणा से भरा हुआ है। जैसे वे कहते हैं कि पूर्व-धारणा बनाकर स्वयं में प्रवेश करना संभव नहीं है, यह माना हुआ हो गया। प्रवेश करके देखा है ? यह धारणा बना ली, बिना प्रवेश किये कि अब संभव नहीं ; अब संभव बहुत मुश्किल होगा। यह धारणा ही रुकावट डालेगी कि संभव नहीं है। जो संभव नहीं है, उसका प्रयास ही क्या करना ? असंभव है, दरवाजा बन्द कर लिया। अब कठिन हो जाएगा।

धारणा-मुक्त होने का अर्थ है कि बिना जाने मन को खुला रखें, बांधें मन। संभव है या असंभव है, ऐसा निर्णय न करें। प्रयोग करें, निर्णय न करें। अनुभव करें, निर्णय न करें। अनुभव से ही निर्णय को आने दें, निर्णय से अनुभव को मत निकालें। क्योंकि अगर पहले ही तय कर लिया, तो फिर प्रयोग की वैज्ञानिकता समाप्त हो गई। आपने तो पहले ही तय कर लिया है कि क्या होनेवाला है। अब जानने को कुछ बचा नहीं है। और अब आपका यह जो मन है वह पूरी कोशिश करेगा वही सिद्ध करने का, जो इसने मान लिया है। हम सब अपने मन को सिद्ध करने में लगे रहते हैं। जो मान लेते हैं, वह सही निकले, तो बड़ी खुशी होती है।

एक मित्र मेरे पास आये थे। उन्होंने कहा कि गीता में जब आपको सुना तब तो मन को बड़ी खुशी हुई। लेकिन लाओत्से में सुनता हूँ, तो उतनी खुशी नहीं होती, बल्कि बड़ी बेचैनी होती है। गीता में सुना, तो मन को खुशी हुई; क्योंकि गीता पहले से ही माने बैठे हैं। तो लगा होगा कि ठीक वही कह रहे हैं, जो मैं मानता हूँ। चित्त को बड़ी शान्ति मिलती है। मेरे अहंकार में एक ईंट जुड़ गई। मकान थोड़ा और बड़ा हो गया।

लेकिन यदि कोई ऐसी बात पता चले कि मकान की एक ईंट खिसक गई और नींव हिलने लगी, तो बेचैनी होती है। हम सत्य की तलाश में थोड़े ही हैं; हम अपने ही मन की तलाश में हैं। हमारा मन सिद्ध हो जाए और सब बुद्ध, और महावीर और कृष्ण और कबीर हमारे गवाह हो जाएँ। गवाही अदालत में जैसे आदमी गवा-

हियाँ खड़ी कर देता है, कि ये बारह गवाह खड़े हैं। ऐसा हमारा भी मन है कि महावीर, बुद्ध, कृष्ण, क्राइस्ट, सब हमारे गवाह की तरह खड़े हो जाएँ और कह दें कि तुम बिलकुल ठीक हो। तुम ठीक हो, यह सारे लोग कह दें, तो चित्त बड़ा प्रसन्न हो जाए।

लेकिन ये लोग बड़े गड़बड़ हैं। ये आपको ठीक करने के लिए जरा भी चिन्तित नहीं हैं। जो ठीक है, वही ठीक है; चाहे उसमें आपको मिटना ही क्यों न पड़े। लेकिन ध्यान रखें, उनकी दया बड़ी है। अगर वे आपको ठीक कह दें तो आप बीमार ही बने रहेंगे। आपकी बीमारी और बढ़ेगी। समर्पित हो जाएगी, तो और बढ़ेगी। आप कोई भी धारणा जब तय ही कर लेते हैं, तो फिर सत्य की खोज उसी क्षण बन्द हो गई। सत्य की तरफ जाने का अर्थ ही है कि मैं निष्पक्ष जा रहा हूँ। लेकिन उन मित्र ने पूछा है कि अगर हम इसको मान ही न लें कि आत्मा भीतर है, तो आत्मा को जानने की प्रवृत्ति क्यों पैदा होगी?

उनका ख्याल है कि जिज्ञासा तभी पैदा होती है, जब हमें पता हो कि कुछ है। लेकिन जिज्ञासा यह भी तो हो सकती है कि हमारे मन में ख्याल उठे कि कुछ है या कुछ नहीं है। आप इस कमरे के बाहर से निकलें; इस कमरे के भीतर क्या है, इसके जानने की जिज्ञासा हो सकती है बिना यह जाने कि क्या है? सच तो यह है कि अगर आपको पहले ही यह भरोसा हो गया है कि कमरे के भीतर क्या है, तो जिज्ञासा की कोई जरूरत न रह गई। जितना बड़ा भरोसा, उतनी कम जिज्ञासा। और श्रद्धा यदि पूर्ण है बिना जाने, तो जिज्ञासा की तो आवश्यकता ही नहीं रही।

क्या जरूरत है? अगर आपको पता ही है कि भीतर आत्मा है और महावीर, बुद्ध और सब खोज-खोज कर कह गए, तो आप और किसलिए मेहनत करें? और एक दफा पता चल गया, बात खत्म हो गई कि है भीतर, अब हम दूसरा काम करें। इसी में क्यों समय लगाएँ? अगर आपको पक्का ही पता चल गया, तो जिज्ञासा मर जाएगी। नहीं, आपको कुछ भी पता नहीं है कि भीतर क्या है? एक घुप्प अंधकार है। ओर-छोर, पता नहीं चलता है। कोई पहचान

नहीं मालूम होती है। क्या है भीतर ? है भी कुछ या नहीं है ? मृत्यु है या अमृत ? वहाँ कोई है भी ? या सिर्फ एक शून्य है। तब जिज्ञासा पैदा होती है।

जिज्ञासा का अर्थ है : जहाँ आप अवाक् खड़े हैं और आपको कुछ भी पता नहीं है। जहाँ धारणा है, वहाँ आप अवाक् नहीं हैं। आपको पता है ही। इसलिए धारणावाले लोग जिज्ञासु नहीं होते हैं। जिज्ञासा की तो परिपूर्णता तभी है, जब धारणा की परम शून्यता हो। जिस मात्रा में धारणा उस मात्रा में जिज्ञासा कम हो जाएगी।

इसलिए बच्चे जिज्ञासु होते हैं; बूढ़े जिज्ञासु नहीं होते। क्या कारण है ? बच्चे ऐसे प्रश्न पूछते हैं कि बड़े-बड़े बूढ़े भी उनके जवाब नहीं दे पाते। बच्चे जिज्ञासु होते हैं, क्योंकि, धारणा उनकी कोई भी नहीं है। बूढ़ों की जिज्ञासा समाप्त हो जाती है। क्योंकि धारणा ही धारणा का ढेर लग गया होता है और जिज्ञासा बिलकुल नहीं रह जाती। बूढ़े भी उसी जगत् में खड़े हैं, बच्चे भी उसी जगत् में खड़े हैं, लेकिन बूढ़ों को कोई जिज्ञासा पैदा नहीं होती।

सुबह सूरज निकलता है। बूढ़ा भी देखता है, बच्चा भी देखता है। बच्चे को तत्काल जिज्ञासा पैदा होती है कि क्या है ? पक्षी गीत गाता है। बच्चे को जिज्ञासा होती है कि क्या है ? बूढ़े को कोई जिज्ञासा नहीं होती। अगर बच्चा पूछता भी है, तो वह कहता है चुप रहो। जब बड़े हो जाओगे, तो जान लोगे। इसको खुद भी बड़े होकर पता नहीं चला है। अगर एक बात इसको पता चल गई है कि बड़े होते-होते जिज्ञासा मर जाती है। तब पूछेगा ही नहीं।

यह बेटा भी जब कल बूढ़ा होगा, तब अपने बेटे से कहेगा कि घबड़ाओ मत अभी तुम्हारी उम्र कम है, जब उम्र बड़ी हो जायेगी, तब सब जान लोगे। लेकिन जिनकी उम्र बड़ी है, उन्हें क्या पता है ? कुछ पता नहीं है। सिर्फ उनकी जिज्ञासा मर गई है। उनकी जो ताजगी थी पूछने की, वह खो गई है। जो खोजने की आकांक्षा थी, वह मर गई है। सिद्धांतों के ढेर उनके पास हो गए हैं। हर चीज का उत्तर उनके पास है। प्रश्न उनके पास एक भी नहीं, उत्तर उनके पास सब हैं। प्रश्न उनके बिलकुल खो गए हैं। जानकारी

बहुत उनके पास हो गई है।

इसलिए बूढ़े के भीतर शरीर ही बूढ़ा हो जाए, यह तो स्वाभाविक है। लेकिन यह आत्मा का बूढ़ा हो जाना दुखदायी है। शरीर तो बूढ़ा होगा, यह स्वाभाविक है। लेकिन अगर किसी बूढ़े के भीतर शरीर बूढ़ा और बच्चे जैसी जिज्ञासा जारी रहे, तो बुढ़ापे से ज्यादा सुन्दर और घटना जगत् में दूसरी नहीं है। क्योंकि तब बच्चे जैसी ताजी ओस सुबह के भीतर होती है। और जिन्दगी के अनुभव कचरे की तरह दबा नहीं पाते। और जिन्दगी की धारणाएँ राख नहीं बन पातीं। तो वैसे बूढ़े की आँखों में बच्चा झाँकता है और जिस दिन अनुभव हो बूढ़े का और जिज्ञासा हो बच्चे की, उस दिन व्यक्ति सत्य के निकटतम हो जाता है।

लेकिन हमरी तकलीफ यह है कि हम सोचते हैं कि अगर हमें पहले से पता ही नहीं है, तो हम खोजने ही क्यों जाएँगे ?

खोजने जाने का मतलब ही यह होता है कि पता नहीं है, इसलिए हम खोजने जाते हैं। धारणा हत्या है स्वयं की। और सत्य से बचने का उपाय है। पूछा है उन्होंने : क्या जिज्ञासा का मूल कारण वस्तु-तत्व का पूर्व ज्ञान नहीं है ? अगर पूर्व ज्ञान ही है तो जिज्ञासा बिलकुल मूढ़ता होगी। ज्ञान के भी पूर्व ज्ञान कैसे हो सकता है ? ज्ञान होगा तभी और जब ज्ञान होगा, तब जिज्ञासा खो जाएगी।

खतरा यही है कि बिना ज्ञान हुए भी जिज्ञासा खो सकती है, अगर हम दूसरों के ज्ञान को अपना ज्ञान मान लें। उसे हम पूर्व-ज्ञान कहते हैं। महावीर कहते हैं कि आत्मा है, अनन्त वीर्य, अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, ऐसी है, ऐसी है, ऐसी है ! यह उनका ज्ञान है। हमारे लिए वह पूर्व-ज्ञान बन सकता है। उस पूर्व-ज्ञान का मतलब क्या हुआ ?

इसका मतलब हुआ यह महावीर का ज्ञान है, हमें तो कुछ पता नहीं इस आत्मा का। लेकिन महावीर के शब्दों को हम स्वीकार कर लेते हैं। महावीर के शब्दों को कितने लोग स्वीकार किये हुए हैं। उनमें से कौन महावीर की खोज पर जाता है ? बुद्ध को कितने करोड़ों लोग मानते हैं। लेकिन कौन बुद्ध जैसा खोजता है ? तो

भला हो कि बुद्ध को कोई और बुद्ध नहीं मिला पूर्व-ज्ञान देने वाला। खुद ही खोजा, तो पाया। सत्य स्वयं की खोज से मिलता है। इतना सस्ता नहीं है कि दूसरे से मिल जाए।

हाँ, दूसरे से ज्ञान मिल सकता है। लाओत्से उसी ज्ञान के लिए कहता है कि छोड़ो, यह बुद्धिमत्ता छोड़ो, जो उधार है।

किसी ने पूछा है, क्या स्व बोध आनन्द रूप नहीं है? यदि है, तो स्व बोध को आनन्द रूप मनाने में आपको संकोच क्यों है? श्रुतियाँ तो आत्मा को स्पष्ट रूप से आनन्द-स्वरूप मानती हैं।

श्रुतियाँ मानती होंगी—जिन्होंने कहा होगा, उन्होंने जाना होगा। जिन्होंने जाना है उन सभी ने कहा है कि वह आनन्द-स्वरूप है। लेकिन खतरा तो वहाँ शुरू होता है कि जिन्होंने नहीं जाना वे भी मान लेते हैं कि वह आनन्द-स्वरूप है। खतरा जानने वालों के लिए नहीं है: खतरा सुनने वालों के साथ है। आप भी मानकर बैठ जाते हैं कि आनन्द रूप है। आपको न आनन्द का पता है कि आनन्द क्या है? आनन्द रूप का क्या अर्थ होता है? न आत्मा का पता है कि आत्मा क्या है? न आनन्द का पता है कि आनन्द क्या है? लेकिन यह वाक्य बड़ा सुरुचिकर लगता है कि आत्मा आनन्द-रूप है। इस का अर्थ क्या होगा?

दुख आपने जाना, सुख की कभी कोई झलक पायी होगी। आनन्द की तो कोई झलक आपको नहीं मिली। तो जब भी आप समझते हैं कि आत्मा आनन्दरूप है, तो आप सोचते हैं, खूब सुख, सदा सुख रहेगा, ऐसा कुछ होगा। आपके लिए आनन्द का अर्थ सुख का ही विस्तार हो सकता है। सघन सुख होगा। कभी समाप्त न होनेवाला सुख होगा। यही आपकी धारणा हो सकती है। आनन्द का सुख से उतना ही सम्बन्ध है, जितना दुख से। दोनों में कोई सम्बन्ध नहीं है। आत्मा का भी पता नहीं, आनन्द का भी पता नहीं, लेकिन शब्द सुनते—सुनते लगता है कि पता है कि आत्मा आनन्द है। इसको दोहराते रहे बैठकर-आत्मा आनन्द है, आत्मा आनन्द है। उससे कुछ भी नहीं होगा।

लाओत्से की दृष्टि यह नहीं है कि आत्मा आनन्द नहीं है।

लाओत्से यह कह रहा है कि हम कुछ नहीं कहेंगे कि आत्मा क्या है? तुम्हीं जाओ और जानो। हम इतना ही कहेंगे कि तुम कैसे जा सकते हो? हम यह न कहेंगे कि जाने पर तुम्हें क्या मिलेगा? क्योंकि तुम इतने धोखेबाज हो कि बिना जाये यहीं बैठकर रटने लगोगे कि आत्मा आनन्द है, आत्मा आनन्द है। और बार-बार पुनरुक्त करके अपने को ही सम्मोहित कर लोगे और वह भूल ही जाओगे कि तुम पहुँचे नहीं हो, तुम्हें कुछ भी पता नहीं है।

सत्य क्या है? इसको कहने से आपको शब्द सुनाई पड़ते हैं, सत्य सुनाई नहीं पड़ता। शब्द सुनाई पड़ते हैं और बार-बार सुनाई पड़ने से बहुत शब्द परिचित हो जाते हैं। और परिचित शब्द खतरनाक हैं। यहूदियों में एक प्रथा है और कीमती प्रथा है कि परमात्मा का नाम न लिया जाए। यहूदियों ने परमात्मा का जो नाम रखा है, वह है याहवेह। उस शब्द का उतना ही मतलब होता है कि जिसका कोई नाम नहीं है। क्योंकि नाम बार-बार दोहराने से कहीं ऐसा भ्रम न पैदा हो जाए कि तुम जानते हो। और याहवेह, जिस शब्द का अर्थ इतना ही होता है कि जिसका कोई नाम नहीं, इसका भी उपयोग नहीं करना है। नहीं तो यही नाम लग जाएगा।

आदमी के लिए तकलीफें हैं और उन तकलीफों को जो समझते हैं, वे यह नहीं कहेंगे कि क्या है आत्मा, वे इतना ही कहेंगे कि कैसे तुम जा सकते हो!

अन्धे से क्या फायदा है कहने का कि प्रकाश क्या है? इतना ही काफी है कि क्या है इलाज, क्या है औषधि कि आँखें खुल जाएँ। और खतरा यह है कि अन्धे को आप बता दें कि प्रकाश यह है और अन्धा भी सुन ले। क्योंकि अन्धा बहरा तो नहीं है, सुनता है।

बल्कि सच तो यह है कि आँख वालों से अन्धे ज्यादा सुनते हैं। ख्याल किया है, अन्धों के कान तेज हो जाते हैं। आँख की ताकत भी कान को मिल जाती है। अन्धे सुनने में कुशल हो जाते हैं। अन्धों की स्मृति भी ज्यादा होती है आँख वालों से क्योंकि आँख से बनती है हमारी कोई नब्बे प्रतिशत स्मृतियाँ। वह काम बन्द हो गया है। तो सारी स्मृति की शक्ति कान को मिल जाती है। अन्धे की स्मृति भी

बड़ी तीव्र होती है।

अन्धे को अगर कोई बता दे कि प्रकाश क्या है, तो वह सुन भी लेगा, समझ भी लेगा, समझेगा कि समझ लिया, कंठस्थ कर लेगा। फिर स्मृति मजबूत हो जाएगी। वह भूल ही जाएगा कि मैं अन्धा हूँ और प्रकाश से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है और न मेरी प्रकाश से कोई पहचान है। आँख वाले कहते हैं कि प्रकाश ऐसा है।

इन मित्र ने लिखा है कि श्रुतियाँ कहती हैं—यही अर्थ हुआ कि आँख वाले कहते हैं कि प्रकाश ऐसा है। आँख वालों के कहने से क्या सम्बन्ध है। आँख चाहिएँ। और खतरा यही है कि अन्धे भी कंठस्थ कर लेते हैं। इसलिए लाओत्से नहीं चर्चा करता है कि आत्मा क्या है, क्या नहीं है। वह इतना ही कहता है कि कैसे आँख की चिकित्सा हो सकती है। बस वह चिकित्सा हो जाए, तो काफी है।

एक मित्र ने पूछा है कि हम धार्मिक ही क्यों हों? जब न आदि का पता है, न अन्त का, न ईश्वर, न आत्मा का कोई पता है? बुद्ध पुरुष कहते हैं जिस सत्य की बात, यदि वह सत्य है तो वे सभी को उनका अनुभव क्यों नहीं करवा पाते हैं?

कोई नहीं कहता है आपसे कि आप धार्मिक हों। कम से कम लाओत्से तो नहीं कहेगा। क्योंकि धार्मिक लोगों ने इतने उपद्रव किये हैं कि आप न हों, तो अच्छा है। लाओत्से नहीं कहता कि धार्मिक हों।

लाओत्से तो इतना ही कहता है कि जो आप हैं, वही हों। आप पूछ सकते हैं कि वही हम क्यों हों? क्योंकि वही आप हो सकते हैं। और कुछ होने का उपाय नहीं है। हाँ, और कुछ होने की आप कोशिश कर सकते हैं। उस कोशिश में जीवन व्यर्थ हो सकता है।

लेकिन आप कह सकते हैं कि हम जीवन को व्यर्थ क्यों न करें? कोई आपको रोक नहीं सकता है। और इसलिए बुद्ध पुरुष भी हार जाते हैं और आपको सत्य का ज्ञान नहीं करवा पाते। क्योंकि आप कहते हैं कि हम सत्य का ज्ञान क्यों करें। बुद्ध पुरुष भी क्या कर सकते हैं? वह कहते हैं, जो आनन्द उन्हें उपलब्ध हुआ है, जो शान्ति उन्होंने पाई है, जो प्रकाश उन्हें मिला है, उसकी प्यास जगाने की

चेष्टा कर सकते हैं। वे प्रकाश तो नहीं दे सकते हैं। लेकिन प्यास जगाने की चेष्टा कर सकते हैं।

लेकिन आप यह भी कह सकते हैं कि क्यों हमारी प्यास जगाने की चेष्टा कर रहे हैं? लेकिन आप थोड़ा समझने की कोशिश करें।

अगर आप धार्मिक नहीं होना चाहते हैं तो आप यहाँ पहुँच कैसे गए? आपको यह प्रश्न पूछने का ख्याल क्यों आया? कोई बेचैनी है भीतर, जो आपको यहाँ तक ले आई है। और आपने इतनी कृपा की और प्रश्न लिखा, इतना कष्ट उठाया। कोई बेचैनी है भीतर। एक बात तय है कि आप कुछ खोज रहे हैं। नहीं तो आने का कोई कारण नहीं है, पूछने का कोई कारण नहीं।

कोई खोज है। आप क्या खोज रहे हैं? बुद्ध उसी को धर्म कहते हैं। लाओत्से उसी को ताओ कहते हैं। आपको पता हो या न पता हो, आप धर्म खोज रहे हैं। आपको यह भी पता नहीं है कि आप क्या खोज रहे हैं। थोड़ा अपने भीतर जाँच-पड़ताल करें कि क्या है आकांक्षा, क्या है तलाश? हमें यह भी तो पता नहीं कि हम कौन हैं, क्या हैं किस वजह से हैं? हमारा होना बिलकुल अकारण मालूम होता है इस पृथ्वी पर, जैसे अचानक फेंक दिये गये हैं। क्यों है?

बेचैनी है भीतर। और वह बेचैनी तब तक समाप्त न होगी, जब तक इस अस्तित्व के भीतर अपनी जड़ों का हमें अनुभव न हो जाए। जब तक हम इस अस्तित्व और अपने बीच एक सम्बन्ध को न जान लें, तब तक हममें यह बेचैनी जारी होगी।

धार्मिक होने का और क्या अर्थ है।

धार्मिक होने का इतना ही अर्थ है: वह आदमी जिसने अस्तित्व और अपने बीच सम्बन्ध खोज लिया, जिसने विराट और अपने बीच नाता खोज लिया। जो, अब इस जगत् में एक परदेशी, एक अजनबी, स्ट्रेन्जर नहीं है; यह जगत् उसका परिवार है। ये चाँद-तारे और सूरज उसका परिवार हो गए। और वह अपने घर में है। धार्मिक होने का क्या मतलब है? धार्मिक होने का मतलब है कि हम कहीं परदेश में नहीं भटक रहे हैं, हम किन्हीं अजनबी लोगों के बीच में नहीं; यह जगत् हमारा घर है।

लेकिन मकान घर नहीं होता है। मकान तो सभी हैं। कौन-सा मकान घर होता है? जिसके बीच और आपके बीच एक आत्मैक्य स्थापित हो जाता है, जिसके बीच और आपके बीच एक आन्तरिक मिलन हो जाता है, तब मकान घर हो जाता है। अधार्मिक आदमी संसार में रहता है और धार्मिक आदमी परमात्मा में। संसार और उसके बीच एक सम्बन्ध, एक गहन सम्बन्ध हो जाता है। उसके भीतर के हृदय की वीणा पर जगत् की सब चीजें संगीत उठाने लगती हैं। सूरज फिर पराया नहीं है, और चाँद-तारे फिर दूर नहीं हैं। सभी कुछ अपना है। और सारा विराट ब्रह्मांड अपना घर है। ऐसी जो प्रतीति है, वह धार्मिकता है।

अगर आप इस जगत् में एक परिवार को खोज रहे हैं, एक प्रेम को तो आप धर्म को खोज रहे हैं। अगर आप एक व्यक्ति के भी प्रेम में पड़ते हैं, तो आपने जगत् के एक हिस्से को धार्मिक बना दिया। फिर जितना जिसका बड़ा है परिवार, उतना है उसका गहन आनन्द।

कुछ लोग ऐसे हैं कि वे ही उनका अकेला परिवार है। कहीं उनका कोई नाता-रिश्ता नहीं हैं। फिर अगर ऐसे लोगों को लगने लगता है कि हम आउट-साइडर हैं तो आश्चर्य क्या? कोलिन विल्सन ने एक किताब लिखी है—'द आउटसाइडर।' इस युग के लिए प्रतीक-किताब है। इस युग में हर आदमी को लगता है कि मैं एक अजनबी हूँ, क्यों हूँ? किससे मेरा क्या सम्बन्ध है? कौन मेरा, मैं किसका? कहीं कोई दिखाई नहीं पड़ता है जोड़। उखड़े-उखड़े लोग, जैसे वृक्ष को जमीन से उखाड़ दिया गया हो, हवा में लटका दिया गया हो वैसे ही हम हैं।

धार्मिक होने का अर्थ है जड़ों की खोज। सीमोनवेल ने एक किताब लिखी है–'द नीड फार द रूट्स।' इस सदी में थोड़े से धार्मिक व्यक्तियों में वह महिला भी एक थी। उसने कहा कि धर्म जो है, वह जड़ों की तलाश है। यह जो लटका हुआ आकाश में, अधर में लटका हुआ वृक्ष है, सूखता हुआ, कुम्हलाता हुआ, तड़पता हुआ, इसको वापस जगह देनी है जमीन में। इसको फिर इसकी जड़ें मिल जाएँ,

यह फिर हरा हो जाए, इसमें फिर फूल आने लगें।

धार्मिक होने का अर्थ है अपनी ही खोज। अपने और जगत् के बीच किसी सम्बन्ध की खोज। अपने और जगत् के बीच किसी गहन प्रेम की खोज। मैं नहीं कहता कि आप धार्मिक हो जाएँ। लेकिन इस जमीन पर एक भी ऐसा आदमी नहीं है, जो धार्मिक-नहीं होना चाह रहा हो, भले ही वह इंकार ही क्यों न कर रहा हो। एक आदमी ऐसा खोजना मुश्किल है, जो धार्मिक न होना चाहे। धर्म को वह शब्द क्या देता है यह उसकी मर्जी है। वह अपनी आकांक्षा को क्या-क्या रूप आकृति देता है, यह भी उसकी मर्जी है। लेकिन मुझे अब तक ऐसा एक भी आदमी नहीं मिला, जो धार्मिक होने की तलाश में न हो।

जिसको हम नास्तिक कह रहे हैं, वह भी तलाश में है। असल में आदमी की तलाश ही यही है कि वह इस जगत् में असंगत और व्यर्थ तो नहीं है, इस जगत् में कोई उखड़ी हुई चीज, व्यर्थ की चीज तो नहीं है। इस जगत् में उसके होने की कोई अर्थवत्ता है, कोई सिगनीफिकेन्स है ? वह है इस विराट में उसका कोई मूल्य है ?

इस जगत् में मूल्य की खोज धर्म है। आप हैं, आपका कोई मूल्य है इस जगत् में ? कीमत हो सकती है, पर मूल्य कोई है आपका इस जगत् में ? अगर आपका कोई मूल्य है, तो इसका अर्थ हुआ कि यह जगत् आपके भीतर से विकसित हो रहा है, यह विराट चेतना की धारा आपके भीतर से विकासमान हो रही है, यह पूरा जगत् चेतना की धारा आपके भीतर से विकासमान हो रही है। यह पूरा जगत् आपको चाहता है, आपके हुए बिना अधूरा है। आप न होते, तो यह जगत् अधूरा होता, कुछ कमी होती, खाली जगह होती। आपने इस जगत् को भरा है। इस जगत् और आपके बीच कोई गहरा लेन-देन है। प्रतिपल यह जगत् आपको दे रहा है और आपसे ले रहा है। आप और जगत् के बीच एक गहरा अन्तरमिलन है। इस अन्तरमिलन की खोज ही धर्म है।

मैं यह नहीं कहता कि आप धार्मिक हो जाएँ। दुनिया में कोई किसी के कहने से कभी धार्मिक नहीं हुआ है। बल्कि इतने लोग जो

धार्मिक दिखाई पड़ते हैं, यह बहुत चेष्टा करने का फल है।

चार्ल्स डार्विन ने अपने आत्मसंस्मरण में एक बड़ी हैरानी की बात लिखी है। उसने लिखा है कि कुछ चीजें ऐसी हैं कि जो चेष्टा करने से विपरीत परिणाम लाती हैं। उसने कहीं यह पढ़ा था। वह तो वैज्ञानिक आदमी था; डार्विन। उसने सोचा बिना प्रयोग किये कैसे माना जाए ?

उसने अपने पड़ोस के दस जवान लड़कों को बुलाया। सुँघनी होती है नाक में सूँघने की। वह उन दसों के सामने रखी और उसने कहा कि मैं तुमसे यह पूछता हूँ कि तुमने कभी यह नास, यह सुंघनी सूँघ कर देखी है। तो सब ने कहा कि हमें अनुभव है, बड़े ज़ोर से छींकें आती हैं। तो डार्विन ने कहा कि यह दस नकद सोने के सिक्के रखे हैं, जिसको भी छींक आ जाएगी, सुंघनी लेने पर, नकद सोने का सिक्का उसे दे दूंगा। उन दसों ने सूँघनी ली, बड़ी कोशिश की छींक को लाने की, रुपया सामने रखा है, छींक है कि नहीं आती है, आँख से आँसू बहते हैं, मुँह लाल हो जाता है, लेकिन छींक है कि नहीं आती है। दस में से कोई भी सफल नहीं हुआ छींक लाने में।

आप भी सफल न होंगे छींक लाने की कोशिश करके देखें। छींक आती है, लाई नहीं जाती।

धार्मिक होना होता है, कोई आपको धार्मिक बना नहीं सकता। इसलिए धर्म गुरुओं की चेष्टाओं का फल यह है कि किसी को छींक ही नहीं आती है। सब लाने की कोशिश में लगे हैं। लेकिन मेके-निजम है। कुछ चीजें हैं, जो सहज हों, तो ही होती हैं। चेष्टा से वे नहीं होती हैं।

और लाओत्से इसलिए सहज पर जोर देता है। वह कहता है कि यह जो परम सत्य है जीवन का, यह सहज होता है। वह कहता है कि तुम जितने सहज हो जाओगे, यह छलांग लग जाएगी। तुम जितनी चेष्टा करोगे, उतनी ही यह छलांग असम्भव हो जाएगी।

जीवन एक रहस्य !

[ध्यान शिबिर, माउण्ट आबू में कैवल्य उपनिषद् प्रवचन माला में भगवान श्री द्वारा दिया गया १४ वाँ प्रवचन ।]

जीवन खण्डों में विभाजित नहीं है, अखण्ड है । खण्डों में विभाजित दिखाई पड़ता है तो भी अखंड है । बहुत तरह के खंड दिखाई पड़ते हैं, लेकिन सभी खंड मूल आधार में संयुक्त और इकट्ठे हैं । अन्यथा जगत् के होने की संभावना ही नहीं, अस्तित्व के होने की संभावना ही नहीं है । अस्तित्व बिखर जाये अगर खंडों में हो । अस्तित्व बिखरता नहीं क्योंकि खंडों में बँटा हुआ नहीं है, अखंड है ।

इसे हम ऐसा समझें । मेरा हाथ है, एक खंड है । मेरी आँख है, एक खंड है । मेरे पैर हैं, एक खंड हैं । लेकिन मैं अखंड हूँ । मेरी आँख और मेरा हाथ गहरे में जुड़े हैं, संयुक्त हैं । मेरी आँख देखती है और मेरा हाथ चीज को उठाने को बढ़ जाता है । मेरी आँख देखती है सड़क पर साँप को और मेरा पैर छलाँग लगा देता है । फिर भी पैर अलग है, पैर देख नहीं सकता । आँख छलाँग नहीं लगा सकती । हाथ छू सकते हैं, कान सुन सकते हैं । हृदय धड़कता है, मस्तिष्क सोचता है, खून बहता है, हड्डी-मांस-मज्जा बनता है, ये सब खण्ड हैं । और एक-एक खण्ड अलग से समझने की कोशिश करें तो अलग दिखाई पड़ता है । लेकिन गहरे में उतरें तो सभी खण्डों के भीतर कोई एक ही छाया हुआ है जो सभी को घेरे हुए है ।

अन्यथा आँख देखें और पैर छलाँग लगा जाये यह कैसे हो ? कहीं न कहीं आँख और पैर जुड़े होने चाहिएँ । एक ही चीज के दो रूप होने चाहिएँ । कहीं गहरे में जहाँ हृदय धड़कता है वहीं मस्तिष्क का विचार भी जुड़ा होना चाहिए । क्योंकि मस्तिष्क में विचार का फर्क होता है, हृदय की धड़कनें बदल जाती हैं, खून की

चाल बदल जाती है। मस्तिष्क में क्रोध होता है; रक्तचाप बढ़ जाता है। मस्तिष्क में वासना जगती है, सारा शरीर प्रभावित हो जाता है, आँदोलित हो जाता है। पैर में कांटा गड़ता है, आँख में आँसू आ जाते हैं। कहीं न कहीं पैर और आँख, कहीं न कहीं हृदय और मस्तिष्क, कहीं न कहीं इस शरीर का अणु-अणु संयुक्त होना चाहिए। वह संयुक्तता दिखाई नहीं पड़ती, दिखाई तो ये खण्ड पड़ते हैं। वह संयुक्तता तो ओझल है आँख से, ओझल होगी ही।

ठीक ऐसे ही, जैसे हमारा व्यक्ति गहरे में संयुक्त है वैसे ही ये विराट भी संयुक्त है। इसे हम इस तरह से समझें तो शायद खयाल में आ जाये। एक-एक आदमी के शरीर में कोई सात करोड़ जीवन कोष हैं। अर्थ होता है कि एक व्यक्ति को बनाने में सात करोड़ जीवन कोष काम करते हैं। मतलब सात करोड़ जीवन आपके अन्दर बसे हैं। आप एक बड़ी बस्ती हैं। इसलिए भारतियों ने आपके शरीर को "पुर" कहा है और आपको "पुरुष" कहा है।

आप एक बड़ी बस्ती है, सात करोड़ व्यक्ति आपके भीतर हैं। प्रत्येक सेल (कोष) अपने में अपनी नियति, अपना व्यक्तित्व रखता है। आपके शरीर का एक-एक सेल एक-एक व्यक्ति है, अपनी हैसियत से। आपकी हैसियत से नहीं, अपनी ही हैसियत से एक-एक व्यक्ति है। आपके सेल को बाहर निकाल दिया जाये तो वह जिन्दा रहेगा। आप के बिना भी और करोड़ों वर्ष जिन्दा रह सकता है। आप तो सत्तर वर्ष में समाप्त हो जायेंगे। वह करोड़ों वर्ष तक जिन्दा रह सकता है, अपनी हैसियत से।

उसका अपना छोटा-सा हृदय है और अपना छोटा-सा मस्तिष्क है। और वैज्ञानिक कहते हैं आज नहीं कल शायद हमें पता चले कि उसका अपना अनुभव, अपने विचार, उसका अपना अहंकार है। क्योंकि वह अपनी आत्मरक्षा करता है। वह अपने जीवन को बचाने की चेष्टा करता है। हमले में सिकुड़ जाता है, प्रेम में फैल जाता है। वह भी प्रेम करता है। और उस जीवकोष को आपका कोई भी पता नहीं है कि आप भी हैं। ये जो सात करोड़ जीवकोष हैं आपके शरीर में उनको बिलकुल ही पता नहीं है कि उनको जोड़कर भी

कोई एक व्यक्ति भीतर है। इन सबके जोड़ से भी कोई एक समग्र व्यक्ति निर्मित हो रहा है इनका इन्हें कोई पता नहीं है।

उपनिषद् मानते हैं, रहस्यवादी मानते हैं, कहना ठीक नहीं कि मानते हैं, वे जानते ही हैं कि ठीक हम भी इस विराट जगत् में छोटे-छोटे कोष हैं। और हम सब से मिलकर भी जो बन रहा है उसका हमें पता नहीं है। जिस दिन पता चल जाता है उसी दिन उसका नाम परमात्मा हो जाता है।

हम सब भी इस विराट में जीवकोष हैं। हम अपनी हैसियत से जीते हैं। जैसे हमारे शरीर का जीवकोष अपनी हैसियत से जीता है। शायद किसी दिन सूक्ष्म निरीक्षणों से पता चलेगा कि उस जीवकोष में छोटे जीवकोष हैं जो अपनी हैसियत से जीते हैं। जैसे अणु है, भौतिक चीज के लिए परमाणु हैं, इलैक्ट्रोन हैं, इनसे मिलकर सारा पदार्थ बना है। ठीक वैसे ही चैतन्य के कण हैं, जीवकोष हैं, उनसे मिलकर समस्त जीवन बना है। इस विराट जीवन को खण्ड-खण्ड में देखना ही विज्ञान है, उसको अखण्ड देख पाना धर्म है।

अगर आपके शरीर को भी वैज्ञानिक छुएगा तो खण्ड-खण्ड कर लेगा, तोड़ लेगा टुकड़ों में। एक-एक सेल को अलग-अलग समझने की कोशिश करेगा। निश्चित ही, क्योंकि आपके शरीर के किसी सेल को आपका पता नहीं है। आपको, आपके शरीर की कोई भी सेल खबर नहीं दे सकता, इसलिए वैज्ञानिक कहेगा आदमी के भीतर कोई भी आत्मा नहीं है। आदमी करोड़ों सेलों का एक जोड़मात्र है। इकाई नहीं, सिर्फ जोड़। और आदमी अलग से कुछ भी नहीं है। आत्मा अलग से कुछ भी नहीं है। इन सात करोड़ जीवने कोषों का जोड़ है।

फिर वह एक जीवन्त कोष भी काटेगा तो पायेगा कि कुछ रासायनिक तत्व हैं, कुछ रस हैं, धातुएँ कुछ पदार्थ हैं। वे पदार्थ के कण भी उसे खबर नहीं देंगे कि हमसे मिलकर जो बनता था वह एक जीवन था। वे भी सिर्फ अपनी ही खबर देंगे। उन्हें भी इस जीवन का कोई पता नहीं है। तो अन्ततः वैज्ञानिक कहेगा कि जीव-कोष रासायनिक पदार्थों का जोड़ है। और व्यक्ति की आत्मा उन

जीवकोषों का जोड़ है। जोड़, इसको ठीक से समझ लेना। अलग कोई व्यक्तित्व नहीं है जीवन नहीं है जीवन में, सिर्फ जोड़ हैं।

अखण्ड खण्डों का जोड़ नहीं है

धर्म इससे ठीक विपरीत मानता है। धर्म कहता है खण्डों का जोड़ नहीं है अखण्ड। खण्ड, अखण्ड का भाग है। अखण्ड खण्डों का जोड़ नहीं है। खण्ड, अखण्ड का भाग है। खण्डों के जोड़ से अखण्ड नहीं बनता, अखण्ड अपनी हैसियत से है। वह कोई गणितज्ञ जोड़ नहीं है, सावयव एकता है। अखण्ड अपनी हैसियत से है, खण्डों को उसका पता नहीं है। क्योंकि इस खण्ड को अखण्ड का पता इसलिए नहीं होता कि खण्ड अपने भीतर ही बनकर जीता है। इसे पता नहीं है। जब खण्ड अपने से बाहर निकलता है, अपने से ऊपर उठता है, जागकर अपने से पार देखता है, तब उसे अखण्ड की प्रतीति शुरू होती है।

इस अपने से ऊपर उठने का सूत्र ही साक्षी है। इस अपने से पार उठने का सूत्र, साक्षी है। जब भी कोई अपने प्रति भी साक्षी होकर देखता है, तो उसके भीतर अखण्ड का स्मरण शुरू हो जाता है। क्योंकि यह सब जोड़ तो उसे दिखायी पड़ते हैं, हाथ दिखायी पड़ता है, पैर दिखायी पड़ते हैं, आँख दिखायी पड़ती है—इन सबको वह देखने वाला कौन है ? वह अलग हो जाता है अलग होने से ही खण्ड पर अखण्ड की छाया पड़नी शुरू हो जाती है, यों खण्ड के भीतर अखण्ड का अंकुरण शुरू हो जाता है, या खण्ड के भीतर जो सोचा हुआ भार था वह टूट जाता है, जागरण पकड़ता है और अपने से पार आंख उठती है।

ऐसा समझें कि माँ के पेट में एक बच्चा है, गर्भ में उसे इस जगत् का कोई भी पता नहीं, क्यों पता नहीं क्योंकि मां के पेट में जो बच्चा है वह अपनी ही हैसियत से एक इकाई है और उसका जगत् से कोई भी सीधा सम्बन्ध नहीं। उसे पता भी नहीं है कि सूरज निकलता है; चाँद तारे हैं। यह उसे पता भी नहीं है कि लोग हैं, विराट जगत् है, उसे कुछ भी पता नहीं।

और गर्भ के भीतर बच्चा इतना सुरक्षित इकाई में बँधा हुआ

है कि वह अपने को ही जगत् मान ले तो कोई आश्चर्य नहीं है। क्योंकि न उसे खाने के लिए आयोजन करना पड़ता है, न उसे जीने के लिए आयोजन करना पड़ता है, न उसे आत्म सुरक्षा के लिए आयोजन करना पड़ता है। उसे कुछ करना ही नहीं पड़ता, वह तो सिर्फ होता है और परिपूर्ण होता है। उसमें कहीं कोई कमी नहीं है। लेकिन गर्भ के बाहर आयेगा, अपनी सीमाओं को तोड़ेगा तब जगत् का प्रारम्भ होगा।

इसलिए वैज्ञानिक-मनोवैज्ञानिक कहते हैं, कि बच्चे को जन्म के समय बड़ा धक्का लगता है। एक सीमा में बंधा हुआ अस्तित्व था, एकदम से टूट जाता है और एक असीम जगत् में बच्चा खड़ा हो जाता है—जहाँ कुछ भी सूझता नहीं। पहली बार पता चलता है, मैं ही नहीं हूँ, और भी बहुत कुछ है। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि धक्का इतना गहरा है, कि जिन्दगी भर आदमी इस धक्के से संभल नहीं पाता। और मनोवैज्ञानिक तो यह भी कहते हैं, इसमें थोड़ी सच्चाई है, कि आदमी जो शान्ति की खोज करता है, आनन्द की खोज करता है, स्वतन्त्रता की खोज करता है, आत्मा की खोज करता है, परमात्मा की खोज करता है, यह सब उसके गर्भ के अनुभव के कारण करता है। क्योंकि गर्भ में वह परम स्वतन्त्र था, परम आनन्दित था, परम शान्त था, कोई तनाव न था, कोई सीमा न थी, जीवन पूरा का पूरा उपलब्ध था, इसमें कहीं कोई बाधा न थी। कोई जिम्मेवारी न थी, कोई बोझ न था, कोई चिन्ता न थी।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं यह जो मोक्ष की खोज है वह जो गर्भ में शान्ति अनुभव हुई है उसके ही कारण है। इसमें थोड़ी दूर तक सच्चाई है। क्योंकि वह अनुभव गहरा है और फिर इसके बाद जगत् का धक्का लगता है।

अभी किसी मनोवैज्ञानिक ने इस बात को और भारतीय चिन्तन को जोड़ा नहीं; नहीं तो उन्हें बड़ी हैरानी होगी। अगर वह चिन्तन को जोड़ेंगे तो भारतीय मन की यह आकांक्षा कि जन्म से कैसे छुटकारा हो, मरण से कैसे छुटकारा हो, तत्काल उनको ख्याल में आ जाएगी कि यह जन्म से छुटकारे का मतलब है कि गर्भ से जो गहरा

धक्का लगा है उससे कैसे छुटकारा हो। जन्म लेने से जो गहरा धक्का लगा है उससे कैसे छुटकारा हो।

मोक्ष की जो हमारी धारणा है वह एक विराट गर्भ की है, उस हमने हिरण्यमय गर्भ कहा भी है (Womb of the Divine) वह जो परमात्मा का गर्भ है उसमें मैं ऐसे लीन हो जाऊँ जैसे माँ के गर्भ में था। न कोई चिन्ता, न कोई पीड़ा, न पराये का पता। लेकिन बच्चा बाहर आता है तो उसे जगत् दिखायी पड़ता है। बीज टूटता है, अंकुरित होता है तब उसे सूरज के दर्शन होते हैं।

जहाँ तक हमरी स्थिति है, जैसे हम हैं अभी, हम अहंकार के खोल में बन्द हैं। उसके पार हमें कुछ नहीं दिखायी पड़ता, मैं ही मैं दिखाई पड़ता हूँ अगर कभी थोड़ी बहुत झलक किसी से मिलती है तो वह भी मेरे होने के कारण मिलती है—मेरा मित्र है, मेरा भाई है, मेरी पत्नी है, मेरा पति है। तो मेरे से कभी थोड़ा-सा सम्बन्ध जुड़ता है तो थोड़ी-सी झलक हमें मिलती है। बस यही मेरा जगत् है।

इसके पार जो विराट फैला हुआ है उसका मुझे कोई पता नहीं।

धर्म एक पुनर्जन्म है, एक री-बर्थ (Re-birth) है।

एक और गर्भ को तोड़ना है। यह अहंकार को भी तोड़ देना है। लेकिन अहंकार तभी टूटे जब मेरे खंडों का जो जोड़ है उसके पार मुझ में कोई अकुरण शुरू हो जाये। कुछ भिन्न मेरे भीतर जागने लगे मेरे जोड़ से ज्यादा। जिस दिन व्यक्ति को खण्डों के बीच अखण्ड की प्रतीति शुरू होती है उसी दिन ब्रह्म की यात्रा पर निकला ऐसा जानना।

पहली बात—अखंड खंडों का जोड़ नहीं है। इसे हम और थोड़ा एक ढग से समझ लें तो शायद ख्याल में आ जाए, क्योंकि बात तो कठिन है। और अनुभव के न होने से और कठिन हो जाता है समझने में।

तर्क नहीं अनुभूति

एक से दस तक की गिनती है वह सिर्फ जोड़ है। 'एक' एक को दस बार जोड़ देने से दस हो गया। अगर 'एक' एक को दस बार निकाल दें तो पीछे शून्य हो जाएगा कुछ बनेगा नहीं। तो दस, खंडों का

जोड़ है, जोड़ से ज्यादा कुछ भी नहीं हैं, 'दस'।

लेकिन एक कविता है उसमें जितने शब्द हैं उनका जोड़ ही नहीं है। कविता उनसे थोड़ी ज्यादा है। वह जो थोड़ी ज्यादा है। वही गणित और काव्य का फर्क है। अगर कोई कहे कि वह सिर्फ शब्दों का जोड़ है तो वह गलत कह रहा है। जब एक कविता को आप पढ़ते हैं उसके शब्द भूल भी जाएँ तो भी कुछ भनक आपके भीतर शेष रह जाती है। शब्द याद भी न रह जाएँ तो भी इस काव्य का हृदय में जिस भाँति स्पर्श हुआ था वह पीछे छूट जाता है। अगर कविता के सारे शब्दों को अलग निकाल कर रख लें, एक काव्य स्पर्श क्रम वार मिला लें तो उनको पढ़ने से कुछ भी भाव पैदा नहीं होगा। इस कविता के उन्हीं शब्दों को दूसरे ढंग से जमा दें तो काव्य बिखर जाता है, विसर्जित हो जाता है। कविता को पढ़ते वक्त आपके भीतर जो अनुभूति होती है वह शब्दों का जोड़ नहीं है, जोड़ से कुछ ज्यादा है। शायद इसे भी समझना थोड़ा कठिन होगा।

ऐसा समझें एक चित्रकार एक कैनवास पर चित्र बनाता है। रंगों से बनाता है पर चित्र रंगों का जोड़ नहीं है। वे ही रंग 'पिकासो' के हाथ में कुछ और हो जाते हैं, वे ही रंग 'वाँनगॉग' के हाथ में कुछ और हो जाते हैं, वे ही रंग आप भी पोत डालें तो कुछ भी नहीं होते। यह भी हो सकता है कि आप ज्यादा कीमती रंग, और ज्यादा रंग कैनवास पर पोत डालें और पिकासो साधारण से रंग उठाकर कैनवास पर फेंक दे तो भी कैनवास कुछ और हो जाता है।

निश्चित ही रंगों का जोड़ नहीं है चित्र। जोड़ से कुछ ज्यादा है। रंग से प्रकट होता है, लेकिन रंग ही नहीं है। कविता शब्दों से प्रकट होती है, पर शब्द ही नहीं है।

एक वीणावादक वीणा पर चोटें करता है। यह सिर्फ तार पर की गई चोट नहीं है। यह चोट कोई भी कर सकता है, संगीत उससे पैदा नहीं होता। वादक की चोट में भी एक भीतरी समन्वय है, इस चोट में भी चोट से ज्यादा एक गुण है। इस सुनाई पड़ने वाले संगीत में एक छिपा हुआ संगीत भी है। वह छिपा हुआ संगीत प्रकट हो रहा है, उस संगीत से—लेकिन इसका जोड़ नहीं है। जोड़ का मत-

लब है खंडों में जितना है जोड़ों में भी उतना ही होगा।

जोड़ से ज्यादा का अर्थ होता है। खंडों में जो नहीं दिखाई पड़ता था वह जोड़ में प्रकट होता है। जो खंडों के जोड़ से ज्यादा, अगर हो तो सावयव एकता (Organic Unity) पैदा हो जाती है। कई बार ऐसा होता है कि इन दोनों में हम फर्क नहीं कर पाते, और अगर फर्क नहीं कर पाएँ तो जीवन का एक बहुमूल्य आयाम खो जाए। हम फर्क नहीं कर पाते। पहली बात तो हमारी समझ में आ जाती है। दूसरी बात हमारी समझ में नहीं आती।

इसे ऐसा समझें, मेरे शरीर को काट डाला जाए। सब खण्ड अलग रख दिये जाएँ और फिर सारे खण्डों को जोड़कर खड़ा कर दिया जाए। मेरे सारे खंड अलग कर लिये जाएँ और फिर सारे खंडों को जोड़कर मुझे खड़ा कर दिया जाए। फिर एक मोटर का इंजिन है उसे खोलकर एक-एक टुकड़ा अलग कर दिया जाए और फिर सारे टुकड़े जोड़ दिये जाएँ। तो फर्क का पता चलेगा कि मोटर का इंजिन अंगों का एक जोड़मात्र था। तोड़ दो, फिर जोड़ दो, फिर इंजिन शुरू हो जाएगा। लेकिन आदमी के शरीर को तोड़ दो फिर बिलकुल वैसा ही जोड़ दो, कुछ भी शुरू नहीं होगा। कोई चीज खो गई। जो जोड़ से ज्यादा थी वह खो गई।

इसका मतलब यह हुआ कि जो जोड़मात्र है उसको हम विश्लेषण से समझ सकते हैं। जो जोड़ से ज्यादा है उसको हम विश्लेषण से कभी नहीं समझ सकते। इसलिए अनेक बार ऐसा हो जाता है कि जो व्याकरण में बहुत निष्णात है वह काव्य को समझने में असमर्थ हो जाता है: क्योंकि वह केवल जोड़ जानता है, भाषा के नियम जानता है, भाषा का गणित जानता है, सब जानता है। लेकिन भाषा में कुछ ऐसा भी प्रकट होता है जो नियम के पार है, जो गणित से दूर है। जो व्यवस्था का हिस्सा नहीं, व्यवस्था में भीतर प्रकट जरूर होता है लेकिन व्यवस्था के बाहर से आता है, उतरता है, वह चूक जाता है। इसलिए भाषा शास्त्री जितनी ज्यादा भाषा को जानता है उतना ही मुश्किल होता जाता है उसे काव्य को समझना। क्योंकि काव्य की समझ एक दूसरे ही आयाम की माँग करती है। वह आयाम

हैं कि जीवन इकाई खड का जोड़ नहीं होती, जोड़ से ज्यादा होती है। और जो ज्यादा होती है। और जो ज्यादा है वह सिर्फ प्रकट होता है। अगर आपने तोड़ दिया तो वह खो जाता है, अप्रकट हो जाता है।

क्षुद्र और विराट दो नहीं

इस सूत्र में इस गहन सत्य की उद्घोषणा की गई है। ऋषि ने कहा है—मैं छोटे से छोटा और बड़े से बड़ा हूँ। दोनों में 'मैं' ही हूँ। ऐसा मत समझना कि मैं छोटे से छोटा हूँ तो मैं बड़े से बड़ा कैसे हो सकूँगा। इस सूत्र में ऋषि कह रहा है कि खंड भी मैं ही हूँ और अखंड भी मैं ही हूँ। क्षुद्रतम में भी 'मैं' ही हूँ और विराटतम में भी 'मैं' ही हूँ। इसका मतलब हुआ कि क्षुद्र और विराट दो चीजें नहीं हैं, संयुक्त हैं? नहीं तो दोनों में मैं कैसे हो सकूँगा?

इस अँगुली में 'मैं' ही हूँ और इस पूरे शरीर में भी 'मैं' ही हूँ। असल में मेरा होना एक विस्तार है जो क्षुद्र से लेकर विराट तक फैला हुआ है। या ऐसा कहें कि क्षुद्र और विराट मेरे ही दो छोर हैं। सूक्ष्म से सूक्ष्म जहाँ दर्शन समाप्त हो जाता है और दिखाई नहीं पड़ता वहाँ भी 'मैं' ही हूँ। और विराट से विराट जहाँ दर्शन को सीमा नहीं मिलती, अनन्त हो जाता है वहाँ भी 'मैं' ही हूँ।

यहाँ मैं से अर्थ ऋषि का नहीं है। यहाँ मैं से अर्थ अहंकार का नहीं है। यहाँ मैं से अर्थ उस साक्षी का है जिसकी इस सूत्र में चर्चा की गई है। उस साक्षी का अनुभव होते ही क्षुद्र और विराट मेरे दो छोर हैं। और यह क्षुद्र और विराट अनेक-अनेक दिशाओं में फैला हुआ है। जिसे जीसस ने कहा है, "बीफोर अब्राहम आय वॉज" (Before Abraham I Was)। अब्राहम था उसके पहले भी मैं था। अब्राहम को हुए हजारों वर्ष हो चुके थे।

अब्राहम के पहले मैं था इसका क्या मतलब? अर्जुन से कृष्ण ने कहा है कि इसी गीता को जो मैं तुमसे कहता हूँ मैंने पहले फलां ऋषि को कहा था, उसके पहले फलां ऋषि को कहा था, उसके पहले फलां ऋषि को कहा था, और इन ऋषियों को हुए हजारों वर्ष हो चुके। ये कृष्ण और जीसस क्या कह रहे हैं?

वे यह कह रहे हैं कि समय के आयाम में जो प्रथम है वह भी मैं हूं और समय के आयाम में जो अन्तिम होगा वह भी मैं हूँ। यह जो समय की धारा है उसमें प्रथम और अन्तिम जुड़े हैं। यह समय की पूरी धारा मेरी ही धारा है। क्षुद्रतम कण हैं उसमें भी मैं हूँ और जो विराट शून्य है उसमें भी मैं हूँ। ये क्षेत्र (Space) के दो छोर हैं—छोटे से छोटा, बड़े से बड़ा, पहला, अंतिम यह समय के दो छोर हैं। हर आयाम में एक का ही विस्तार है।

ऊपर से देखने में बहुत कठिन मालूम होगा कि एक क्षुद्र कण पड़ा है आप के आंगन में वह, और यह विराट जगत् भी वही है। गणित मुश्किल में पड़ेगा क्योंकि गणित कैसे मान सकता है कि यह छोटा-सा कण और यह विराट जगत् एक हैं। गणित कहेगा कहाँ यह छोटा-सा कण है और कहाँ विराट जगत् ? कहाँ यह विराट जगत् कहाँ यह छोटा-सा कण ? कहाँ यह घास की दूब और कहाँ यह विराट जीवन ? लेकिन घास के छोटे-से तिनके में भी वही जीवन प्रकट होता है जो एक महासूर्य में निकलता है।

इसे अगर वैज्ञानिक ढंग से भी हम समझना चाहें तो समझ सकते हैं। थोड़ी सहायता मिलेगी। कभी आपने खयाल किया होगा कि अगर वैज्ञानिक गणनाओं को भी हम थोड़ी-सी गहराई में खोजना शुरू करें और विज्ञान को सीमा में न बांधें और वैज्ञानिक बुद्धि को एक मतांधता न बनायें तो विज्ञान से भी झलकें धर्म की मिलना शुरू हो जाती हैं। क्योंकि अंततः विज्ञान भी उसी जगह पर काम कर रहा है, उसी जीवन पर, जिस पर धर्म है। कहीं न कहीं उसकी प्रतीतियाँ भी धर्म की अनुभूतियों से कुछ न कुछ सम्बन्ध तो बनाएगी ही। क्योंकि दोनों का काम तो एक ही जगह चल रहा है, एक ही जीवन पर। एक छोटा सा घास का तिनका है उसके भीतर जीवन का विज्ञान में क्या अर्थ है ? उसके भीतर भी जीवन का अर्थ वही है जो आपके भीतर है, एक महासूर्य के भीतर है।

महासूर्य के भीतर क्या हो रहा है ? बड़े पैमाने पर हो रहा है। हमारी पृथ्वी जितनी बड़ी है, हमारा सूर्य उससे सात हजार गुना बड़ा है। लेकिन वह बहुत छोटा, मिडियोकर सूर्य है। यह कोई बहुत

बड़ा सूर्य नहीं है, इससे बहुत बड़े सूर्य हैं जगत् में। वैज्ञानिक कहते हैं कि कोई दो अरब सूर्य सारे जगत् में हैं। जिनको आप तारे कहते हैं रात में, वे महासूर्य हैं। फ़ासला इतना ज्यादा है कि वे छोटे तारे दिखाई पड़ते हैं। यह हमारा सूर्य उनके सामने बहुत छोटा है। इसकी कोई गणना नहीं है। इस विराट जगत् में अगर इस सूर्य का आप पता पूछने जायें तो पता लगाना बहुत मुश्किल होगा कि आप किस सूर्य की बात कर रहे हैं।

जिस दिन हम अन्तरिक्ष यात्रा में सफल हो जाएँगे और दूर की यात्रा पर आदमी निकलेगा उस दिन अगर हमें कहीं किन्हीं पृथ्वियों पर और वैज्ञानिक कहते हैं—कि कम से कम पचास हजार ग्रहों पर जीवन है—उन ग्रहों पर यदि हम कभी पहुँचेंगे तब उनको पहली दफे पता चलेगा कि सूरज और भी है जिसके पास एक छोटी-सी पृथ्वी पर जीवन भी है।

यह जो दो-तीन अरब सूर्यों का विस्तार है इनमें भी जीवन का जो सूत्र है वह वही है जो एक छोटे-से घास के तिनके में है। वैज्ञानिक उसे कहते हैं ऑक्सिडाइजेशन (Oxidization)। वे कहते हैं कि वह एक छोटा-सा तिनका भी हवा से ऑक्सिजन को पीता है और अपने भीतर जलाता है। उसके जलने से ही जीवन चलता है। जैसे दीया आपका जल रहा है, आपने कभी खयाल किया कि तूफानी हवा चल रही हो और दीया जल रहा हो। हाँ, यह हो सकता है कि तूफानी हवा में दीया बच जाये, लेकिन बचाने के लिए अगर एक बर्तन आप उस पर ढाँक दें तो वह जल्दी बुझ जाएगा। क्योंकि बर्तन के भीतर की ऑक्सीजन जैसे ही दीया पी लेगा, जला लेगा, फिर मरेगा, बच नहीं सकता।

तो दिया पूरे वक्त हवा की ऑक्सीजन को पी कर जला रहा है। आप भी वही कर रहे हैं। पूरे वक्त जो साँस चल रही है वह ऑक्सीजन लेने के लिए चल रही है। और आपके भीतर एक अग्नि है जो ऑक्सीजन को जला रही है। इसलिए आपकी साँस बन्द कर दें आपके प्राण छूट गये। जब आप दीये पर बर्तन रख देते हैं, तब आपने उसकी सांस बन्द कर दी, प्राण छूट गये। एक घास के ऊपर

बर्तन को ठोंक दें आप ने उसकी सांस बन्द कर दी, प्राण छूट गये। एक खूबसूरत पौधे को घर के भीतर लगा कर रख ले, दो दिन में पायेंगे कि उसके प्राण जाने लगे।

क्योंकि उसके भीतर जो जीवन्त प्रक्रिया थी, विज्ञान के हिसाब से, वह इतनी थी कि वह अपने भीतर हवा को ले जाकर उसमें से ऑक्सिजन जला रहा था। और ऑक्सीजन जब जल जाती है तब जो कारबन बच रहा था उसे बाहर फेंक रहा था। हम भी फेंक रहे हैं, पूरे वक्त। इसलिए एक भीड़ भरे कमरे में आप सो जायें और सब तरफ से कमरा बन्द हो तो रातभर में सारे लोग मर सकते हैं। क्योंकि अगर कमरे की ऑक्सिजन चुक जाये और सब कार्बन को फेंकते चले जायें और फिर मजबूरी में कार्बन ही पीना पड़े तो आप मर जायेंगे।

चाहे महासूर्य जल रहा हो और चाहे घास का एक तिनका जी रहा हो और चाहे एक बुद्ध जी रहे हों, जीने का नियम एक ही है। सब अपने-अपने पैमाने पर प्राणवायु को जला रहे हैं, विज्ञान के हिसाब से।

अगर हम यही समझें तो भी पता लगेगा कि क्षुद्र से क्षुद्र में और विराट से विराट में एक ही जीवन है। कुछ वैज्ञानिकों को संदेह है कि पृथ्वी भी सांस लेती है रोंये-रोंये, छिद्र-छिद्र साँस लेते हैं। और इसलिए कोई भी पृथ्वी जीवित नहीं रह सकती अगर उसके पास कम-से-कम दो सौ मील वायु का घेरा न हो।

इस हमारी पृथ्वी के दो-सौ मील तक वायु का घेरा है, चारों तरफ। इसलिए अब तो वैज्ञानिकों को सूत्र मिल गया है जिस ग्रह के पास भी वायु का घेरा है अगर उसमें कार्बन और ऑक्सिजन की एक निश्चित मात्रा है तो वहाँ जीवन होगा। क्योंकि वह पृथ्वी जीवित है, इसका मतलब हुआ कुछ पृथ्वियां जीवित हैं कुछ मृत हैं। लेकिन आज जो मृत है वे कभी जीवित थीं। और आज जो जीवित हैं वे जीवित हैं वे कभी मृत हो जायेंगी। उसकी जीवन प्रक्रिया लम्बी है। यह दूसरी बात है कि हम कई बार मरते हैं और जीते हैं अनेक-अनेक बार और पृथ्वी जीवित रहती है।

पहाड़ भी सांस लेते हैं। पहाड़ों में जिन्दा पहाड़ हैं और मुर्दा पहाड़ हैं। जिस पहाड़ी पर हम बैठे हुए हैं वह (माऊन्ट आबू) वह एक मरी हुई पहाड़ी है। यह कभी जीवित थी। यह जगत् की पुरानी पहाड़ी है। हिमालय इस पहाड़ी के सामने बच्चा है। लेकिन हिमालय अभी जीवित है। यह जानकर आप हैरान होंगे कि हिमालय पर संन्यासी का भागने का कारण कुछ और है। हिमालय इस पृथ्वी पर जीवित थोड़े-से पर्वतों में एक है। अभी जीवित है, अभी बढ़ रहा है, अभी साँस ले रहा है। हिमालय रोज बढ़ रहा है, ऊँचा होता जा रहा है। अभी इसमें गति है ग्रोथ (Growth) है, बढ़ाव है।

जो पर्वत जीवित होता है उसपर साधना-बहुत आसान होती है। लेकिन साधना की पद्धति पर निर्भर करेगा। कुछ साधना की पद्धतियाँ ऐसी हैं कि मुर्दा पहाड़ सहयोगी होता है। जैनों ने जहाँ-जहाँ अपने तीर्थ चुने हैं वे मुर्दा पहाड़ पर हैं, जानकर चुने हैं। जैनों की जो साधना पद्धति है वह मुर्दा पहाड़ पर सहयोगी है। इसलिए जैनों ने हिमालय को बिलकुल छोड़ दिया है। हैरानी की बात मालूम पड़ती है कि हिमालय जैसा पर्वत जिस देश में हो उसे एक धर्म बिलकुल छोड़ दें। कहीं उससे सम्पर्क नहीं बनाये।

कोई बिलकुल गहरा कारण होगा। कारण है, कारण जिन्दा पहाड़! जैनों की जो पद्धति है वह तप पर निर्भर है। जितनी मुर्दा जगह हो तप उतना गहन होता है। हिन्दुओं की जो जीवन पद्धति है वह जीवन को घटाने की तरफ नहीं बढ़ाने की तरफ है। दोनों एक अन्त पर पहुंच जाती हैं। अगर जीवन बिलकुल घटकर शून्य हो जाये तो, तो आदमी विराट में प्रवेश कर पाता है। या जीवन बढ़कर बिलकुल पूर्ण हो जाये तो भी आदमी विराट में प्रवेश कर जाता है।

तो हिन्दुओं ने जितने भी तीर्थ चुने हैं, जितने स्थान बनाये साधना के वे जीवित पहाड़ पर हैं। और अगर जीवित पहाड़ नहीं मिला तो नदी चुनी। यह मजे की बात है कि कोई मुर्दा नदी नहीं होती। सभी नदियाँ जिन्दा होती हैं। क्योंकि मुर्दा नदी का मतलब

होता है सिर्फ रास्ता रह गया है नदी का, पानी तो सूख गया होता है। तो मुर्दा नदी का मतलब होता है कि वह खो गई है, वह नहीं है।

जहाँ जीवन मिल सकता था हिन्दुओं ने वहाँ-वहाँ अपने साधना के स्थल चुने। जहाँ जीवन खो गया था वहाँ जैनों ने अपने साधना के स्थल चुने ताकि वहाँ तप में और गहराई आ सके, तप में और गहरे उतरा जा सके।

जैन पद्धतिपूर्ण मृत्यु को उपलब्ध करने की पद्धति है। इसलिए संथारा की आज्ञा दी जा सकती है। हिन्दू पद्धति पूर्ण जीवन को पाने की पद्धति है। परिणाम एक है। क्योंकि चाहे जीवन शून्य हो और चाहे जीवन पूर्ण हो जाये—दो छोर हैं उनसे आप बाहर हो जाते हैं पूर्णता के छोर से गिरते हैं तो भी, शून्यता के छोर से गिरते हैं तो भी बाहर हो जाते हैं।

जगत् एक ही आन्दोलन से जीता है

पृथ्वी भी साँस ले रही है, पहाड़ भी साँस ले रहे हैं, उनकी प्रक्रिया भी वही है। जमीन के भीतर कोयले की खदानें हैं। विज्ञान कहता है कि वह जमीन के द्वारा जो कार्बन इकट्ठा होता है वही है। आपके भीतर भी कोयला इकट्ठा होता है। वही कोयला इकट्ठा होकर आपको बूढ़ा करता है। जितना कार्बन इकट्ठा होता चला जाता है उतना आप बूढ़े होते चले जाते हैं। जिस दिन कार्बन की मात्रा इतनी हो जाती है कि वह आपके जीवन से ज्यादा हो जाता है उस दिन आप मरने के करीब पहुँच जाते हैं। जिस दिन आप मरते हैं, विज्ञान की भाषा में, उस दिन आप कार्बन हो गये। उस दिन आप में ऑक्सीजन न रही, बात समाप्त हो गई, आपका इन्धन चुक गया।

अगर हम इसे जीवन की प्रक्रिया मान लें, है ही जीवन की प्रक्रिया, कम से कम जीवन के प्रकट होने की। जीवन यही नहीं है, लेकिन जीवन के प्रकट होने का अवसर यही है। वहाँ एक विशेष संतुलन ऑक्सिकरण (Oxidization) का एक विशेष संतुलन चाहिए। तो सारा विराट जगत् इसी एक ही प्रक्रिया से जीता है। और सारा विराट जगत् एक ही आन्दोलन से जीता है। पृथ्वी साँस लेती है तो ठीक ही है। इधर कुछ रूसी वैज्ञानिकों का खयाल निर्मित होना

शुरू हुआ है कि जैसे हमारी छाती फूलती और सिकुड़ती है साँस लेने में ऐसे पृथ्वी प्रतिपल थोड़ी छोटी और बड़ी होती है। बहुत बार शायद पृथ्वी के इसी हड़कम्प से बहुत हलन चलन पैदा होते हैं।

आज नहीं कल यह बात शायद साफ हो जायेगी कि पृथ्वी पर भी हृदय के दौरे पर पड़ जाते हैं। न केवल पृथ्वी बलिक पूरा विश्व भी, पूरा युनिवर्स भी साँस लेता है। और पूरा विश्व भी छोटा और बड़ा होता है। जैसे हमारी छाती फूलती है। निश्चित ही उसके छोटे-बड़े होने का समय बड़ा लम्बा होगा। क्योंकि उसकी साँस बड़ी गहरी होगी। हिन्दुओं ने इसे प्रतीक में कहा है कि जो हमारे लिए एक कल्प है वह ब्रह्मा के लिए एक दिन है। वह जो हमारे लिए करोड़ों साँस होंगी वह शायद ब्रह्मा के लिए एक साँस है। शायद वह साँस इतनी लम्बी होगी कि हम उस साँस में अनेक बार जन्मेंगे और मरेंगे इसलिए हमें उनका पता भी नहीं चलेगा।

जब हम साँस ले रहे हैं उसमें भी जीवाणु मर रहे हैं, उनको कभी पता नहीं चलेगा। हमारी एक साँस भीतर जाती है उस बीच हमारी साँस में न मालूम कितने करोड़ जीवाणु जी लेते हैं, जन्म लेते हैं, मर जाते हैं। हमारा ओंठ एक बार दूसरे ओंठ से मिलता है उस मिलने के समय में न मालूम कितने करोड़ जीवाणु जी लेते हैं, जन्म लेते हैं, मर जाते हैं। उन्हें पता भी नहीं चलेगा कि ओंठ वापिस खुलेगा। जो हमारी साँस में जन्मा, जिया, जन्म दे गया दूसरों को, मर गया उसे कैसे पता चलेगा कि यह साँस अब बाहर भी जाती है।

पूरा विश्व साँस ले रहा है। इसी को हिन्दुओं ने कहा है कि जो अण्डे में है, जो पिन्ड में है वही ब्रह्मांड में है। विस्तार है—जो अणु में है वही विराट में है। विस्तार का फर्क है।

अति बुद्धिमत्ता ही पीड़ा

इसलिए ऋषि कहता है मैं छोटे से छोटा और बड़े से बड़ा हूँ। इस विचित्र संसार को मेरा ही रूप मानना चाहिए। मैं ही पुरातन पुरुष हूँ जो सबका आधार हूँ। मैं ही शिव का रूप हूँ और मैं ही हिरण्यमय हूँ। इस विचित्र संसार को मेरा ही रूप मानना। विचित्र जानकर कहा है। विचित्र इसलिए कहा है, कि मनुष्य इसे समझ

न पायेगा, तर्क इसे हल न कर पायेगा, यही उसकी विचित्रता है। और जो इसे तर्क से हल करने चलेगा वह भटक जायेगा। वह इसे कभी न हल कर पायेगा। तर्क जिसे हल कर लेता है वह विचित्र नहीं है। गणित जिसे निपटा लेता है, वह विचित्र नहीं। विचित्र का मतलब यह होता है कि गणित जहाँ असमर्थ है, तर्क जहाँ व्यर्थ है, जहाँ हिसाब-किताब से कुछ पकड़ में नहीं आता। बल्कि उनकी पकड़ में आता है जो सब हिसाब-किताब छोड़कर छलाँग लगा जाते हैं।

यह संसार विचित्र इसलिए है कि कभी-कभी पागल इसे समझ लेते हैं, बुद्धिमान इसे चूक जाते हैं। शायद हमारी सभी की पीड़ा ही यही है अति बुद्धिमत्ता। शायद हमारी पीड़ा ही यही है कि हमने सब नियम खोज लिये हैं कि ठीक क्या है, सत्य क्या है, सही क्या है। फिर जब उसमें ठीक नहीं बैठता तब हम मुश्किल में पड़ जाते हैं।

युनान ने तर्क को जन्म दिया और दो-ढाई हजार वर्षों में उसकी प्रक्रिया को काफी विकसित किया। लेकिन मजे की घटना यूरोप में घटी और वह घटना यह घटी कि युनान के तर्क के आधार से सत्य को खोजने की जो चेष्टा की तो सत्य नहीं मिला, दो हजार वर्षों की चेष्टा में मिला कुछ और। और पश्चिम में यूनान की जड़ों पर बढ़े हुए पौधे का जो आज फूल खिला है वह कहता है कि जीवन में कोई सत्य है ही नहीं। जीवन अर्थहीन (Meaningless) है, जीवन (Absurd) बेमानी है। सत्य तो मिला नहीं, अर्थ तो मिला नहीं, जीवन का अभिप्राय तो मिला नहीं, जीवन का प्रयोजन तो मिला नहीं, जीवन किसलिए है इसका उत्तर तो मिला नहीं, लेकिन तर्क जैसे-जैसे बढ़ता चला गया वैसे-वैसे निष्पत्ति हाथ में यह आयी कि सत्य है ही नहीं। और सत्य की सारी बातचीत केवल शब्दों का खेल है। इसलिए पश्चिम में अनुभव किया जा रहा है कि दर्शन मर गया।

जीवन एक अराजकता

ऑक्सफोर्ड हो, या कैम्ब्रीज हो, या हॉवर्ड हो—वहाँ जो आज पढ़ाया जा रहा है दर्शन के नाम पर, वह दर्शन बिलकुल नहीं है। वहाँ आज यह पढ़ाया जा रहा है कि दर्शन का जन्म ही भाषागत भूल से हुआ है। लींग्युस्टीक (Linguistic) है मामला, भाषा का मामला

है। यह गलती भाषा की हो गई है। यह भाषा की वजह से आदमी ऐसे-ऐसे सवाल उठा लेता है, फिर उनके प्रश्न पूछने लगता है। कोई सत्य नहीं है। सत्य केवल भाषागत खेल है। और कोई अर्थ नहीं है जीवन में, अर्थ सब कल्पित हैं। और जीवन में कोई शृंखला-बद्ध सूत्र नहीं है, जीवन एक अराजकता है।

तर्क यहाँ ले जायेगा। उसका कारण है क्योंकि जीवन विचित्र है, जीवन एक रहस्य है। और रहस्य को समझने जब भी कोई तर्क से चलेगा तो असल में वह नहीं समझने का तय करके चला है। मैं कहता हूँ—कि मुझे किसी से प्रेम है। अब प्रेम एक विचित्रता है। आप कहेंगे कहाँ है? मुझे दिखा दें। तब मैं मुश्किल में पड़ूंगा। अगर मैं दिखाने की कोशिश करूँगा भी तो यही कर सकता हूँ कि प्रेमपूर्ण व्यवहार कर सकता हूँ। आप कह सकते हैं कि यह नहीं होगा इसका क्या भरोसा। यह नाटक हो सकता है। और हम प्रेम के इतने नाटक देख रहे हैं कि सम्भावना यही है कि नाटक हो।

इसमें भीतर कोई प्रमाणिकता (Authenticity) है इसका क्या सबूत? हनुमान से कोई पूछता है तो अपनी छाती फाड़ कर बता देते हैं। मगर, अगर अभी, इस वक्त बताएँगे तो पकड़ कर उन को अस्पताल में जाँच करवाएँगे कि इसमें कोई चालबाजी है। इसमें राम जो अन्दर दिखाई देते हैं पहले से कुछ इन्तजाम किया हुआ है। (Pre-arranged) प्री-अॅरेन्ज्ड होना चाहिए। यहाँ हृदय में कहाँ राम होने वाले हैं। क्या प्रमाण है कि प्रेम है? अब तक तो कोई प्रमाण नहीं दिया जा सका। यह भी मजे की बात है कि आप सब विचार करते हैं। भला प्रेम न करते हो, विचार तो करते हैं। लेकिन इसे अब तक भी सिद्ध नहीं किया जा सकता कि आप विचार करते हैं। क्या प्रमाण है?

आपके मस्तिष्क को काटा-पीटा जाये, वहां कोई विचार नहीं मिलते। आपके हृदय को काटा-पीटा जाये, वहाँ कोई प्रेम नहीं है। आपके हृदय में फुप्फुस मिलता है जो सांस को चलाने का यन्त्र है। आपके मस्तिष्क में बहुत-बहुत सूक्ष्म स्नायुओं का जाल मिलता है, विचार तो कोई मिलते नहीं। इन स्नायुओं के जाल में विचार कहाँ

होते होंगे, यह भी साफ नहीं हो पाता। कैसे होते होंगे यह भी कठिनाई मालूम पड़ती है। क्योंकि विचार और स्नायु इनका कोई तालमेल नहीं दिखता। एक बिजली का तार फैला हुआ है, इस तार को अगर कोई काट कर जाँच करे तो बिजली नहीं मिलेगी। तार की जाँच से तार ही मिलेगा, बिजली नहीं मिलेगी। बिजली थी जरूर, बल्ब जलता था जरूर, लेकिन तार के कटने से नहीं मिलती। तार से कुछ भिन्न उसमें प्रवाहित होता था। काटते ही प्रवाह बन्द हो जाता है। जैसे मस्तिष्क को काटते ही प्रवाह बन्द हो जाता है।

एक नई चिकित्सा की दिशा पैदा होना शुरू हुई है। जो कहती है कि आदमी के सम्बन्ध में अभी तक के जो निदान (Diagnosis) का ढंग है वह सब गलत है।

जैसे समझ लें कि आप बीमार हैं और आपके खून को निकाल कर जाँच की जाए तो नये विचारक यह कह रहे हैं कि जो खून भीतर बहता था वह जीवित था और आपने बाहर निकाल लिया, वह मर गया। मरे की जाँच करके जीवित के सम्बन्ध में जो निर्णय लिया जाये वह ठीक नहीं है।

शरीर के भीतर वह खून जिन्दा था। उसका गुणधर्म कुछ और था। वह जीवन की धारा में प्रवाहित था। उसमें एक बिजली दौड़ रही थी, उसमें जीवन था। आपने इसे बाहर निकाल दिया, वह बिजली तो पीछे छूट गई, तार हाथ में आया। बिजली पीछे छूट गई, तार की जाँच करके आप जो निर्णय ले रहे हैं उस निर्णय से आप बिजली को प्रभावित करेंगे, कोशिश करेंगे यह सब भ्रांत है। शायद आज नहीं कल हमें आदमी के भीतर ही जाँचने के उपाय खोजने पड़ेंगे। बाहर मुर्दा हो जाता है। उसके गुणधर्म ही बदल गये।

जीवन विचित्र है। क्योंकि तर्क से समझ में नहीं आता। और तर्क से जो समझ में आता है उसमें से जीवन चूक जाता है, छूट जाता है, छिटक जाता है। जैसे पारे पर कोई मुट्ठी बाँधे और पारा छिटक जाये। ऐसा ही जीवन छिटक जाता है। तर्क की मुट्ठी बाँधी और जीवन छिटक जाता है। मगर, अगर हम जिद्द करते जाएँ कि शायद जीवन छिटके लेकिन तर्क को तो हम पूरा करके ही रहेंगे तो आखिर

में हम पाएँगे कि जीवन व्यर्थ है। जीवन है ही नहीं, सब धोखा है, सब असत्य है। फिर भी इससे कोई मर तो नहीं जाता। शास्त्र कितना ही कहता हो कि जीवन अर्थहीन है फिर भी जियेगा।

और मार्कसेल कितना ही कहे कि जीवन बेबूझ है, व्यर्थ है, लेकिन जियेगा और कोई कुछ भी कहे, बेबूझ होने से, व्यर्थ होने से, अकारण होने से, अराजक होने से कोई मर तो जाता नहीं। लेकिन तब उदासी से जीता है। और तब जीवन एक सन्ताप बन जाता है। तब जीवन एक बोझ है, जिसे खींचना पड़ता है।

युनान में एक विचारक हुआ, पिरहो, वह कहता था कि जीवन इतना व्यर्थ है कि आत्महत्या के सिवाय कोई सार्थकता नहीं। लेकिन पिरहो नब्बे वर्ष तक जिया। और जब नब्बे वर्ष का बूढ़ा हो गया था तो किसी ने पिरहो से पूछा कि तुम जिन्दगी भर समझाते रहे कि जीवन व्यर्थ है और आत्महत्या के सिवाय कोई मार्ग दिखाई नहीं पड़ता इससे छूटने का, तो तुम अब तक मरे क्यों नहीं ? तो पिरहो ने कहा मामला ऐसा है कि लोगों को समझाने के लिए मुझे जीना पड़ा। कई लोग मर गये ऐसी कथा है कि उसकी मान कर कई लोगों ने आत्महत्या कर ली। कई शिष्यों ने आत्महत्या कर ली। लेकिन पिरहो को मजबूरी से लोगों को समझाने के लिए जीना पड़ा। लेकिन लोगों को समझाने की जरूरत ही क्या है ? अगर जीवन व्यर्थ है, और समझाकर भी क्या समझ में आयेगा ? कम से कम पिरहो का जीवन तो सार्थक मालूम पड़ता है। समझा रहे हैं, सफल हो रहे हैं, कोई मर रहा है। और वह बेचारे इस सब के लिए जी रहे हैं। उनका जीवन कम से कम सार्थक मालूम होता है, भला दूसरों को उन्होंने समझा दिया हो कि व्यर्थ है। और पिरहो प्रसन्नता से जी रहे हैं क्योंकि कन्वर्ट (Convert) उन्हें मिलते हैं शिष्य मिलते हैं, वह प्रसन्नता से जी रहे हैं।

अगर सार्त्र जी रहा है और जीवन व्यर्थ है, तो फिर जीना भारी हो जाये।

अलबर्ट कामु ने अपनी एक बहुत महत्वपूर्ण किताब—इस वक्तव्य से शुरू की है, कि एक ही दार्शनिक प्रश्न है मनुष्य के सामने, वह

है आत्मघात (The only Metaphysical problem before Mankind, is suicide) जीवन नहीं है सवाल आत्मघात है। और यह यूनान के तर्क की दो हजार साल की निष्पत्ति; यह फूल हैं।

विज्ञान है विश्लेषण, धर्म है संश्लेषण

भारत एक दूसरी दिशा से काम करता रहा है। भारत की दिशा जीवन के इस रहस्य को, उसकी विचित्रता को तर्क से हल करने की नहीं, अनुभूति से प्रवेश करने की है। विचार करके कोई उपाय नहीं है विचित्र को समझाने का। विचार दुश्मनी है, उपाय नहीं है। चिंतन से कोई द्वार नहीं खुलता। रहस्य के समस्त चिन्तन मूढ़ता है।

चिन्तन का अपना मार्ग है। जहाँ रहस्य न हो वहाँ चिन्तन का उपाय है, लेकिन जहाँ रहस्य हो वहां चिन्तन के कपड़े बाहर ही उतार कर भीतर प्रवेश करना होता है; जहां चिन्तन का छिद्र न हो। कहाँ है वह छिद्र ? जो चिन्तन का नहीं। खण्ड को जानना हो तो विचार उपयोगी है। अखण्ड को जानना हो तो निर्विचार उपयोगी है। टुकड़े को समझना हो तो तर्क उपयोगी है। विराट को, समग्र को समझना हो तर्क उपयोगी नहीं है। क्यों ? क्योंकि तर्क काटकर ही समझता है, वह विश्लेषण से ही समझता है। तर्क की पद्धति ही तोड़ना है। इसलिए अगर जोड़ को समझना है तो तर्क से समझना एकदम बेमानी है।

अगर तलवार का काम काटना है तो किसी चीज को जोड़ने के लिए तलवार का उपयोग करना मूढ़ता है। क्योंकि उसमें तलवार का कोई कसूर नहीं। तलवार का काम ही काटना है, वह है ही काटने के लिए; उठायी तलवार, और चले कोई चीज जोड़ने तो आखिर में जोड़ और मुश्किल हो जायेगा। जो जुड़ा था वह और टूट जायेगा। तर्क तलवार है, किसी भी तथ्य को तोड़ने के लिए। निश्चित ही तोड़ने से भी बहुत बातें समझने में आती हैं। विज्ञान उस प्रक्रिया का उपयोग करता है। विज्ञान है विश्लेषण (Analysis) —तोड़ना इसलिए तर्क है उपाय। धर्म है संश्लेषण (Synthesis) —जोड़ना। इसलिए तर्क नहीं है उपाय। और अगर तर्क उपाय नहीं है तो फिर यह सूत्र ठीक कहता है कि इस विचित्र संसार को मेरा

ही रूप मानना चाहिए। विचित्र है संसार।

अतर्क्य (illogical, irrational) है। बुद्धि की जिद्द करें तो बाहर भी खड़े रह सकते हैं। बुद्धि को छोड़ें तो ही भीतर प्रवेश है। इसलिए मैंने कहा कि कभी-कभी पागल पहुँच जाते हैं और बुद्धिमान लटक जाते हैं। इसलिए बुद्धिमानों की नजरों में जीसस पागल ही है।

कुछ लोगों ने पश्चिम में ऐसी किताबें लिखी हैं जिसमें सिद्ध करने की कोशिश की है कि जीसस विक्षिप्त थे। क्योंकि कोई आदमी अपने होश में यह कैसे कह सकता है कि ईश्वर का पुत्र हूँ। क्या मतलब इसका? हिन्दुस्तान इतना हिम्मतवर नहीं है, नहीं तो हम कृष्ण को भी कहेंगे कि इस आदमी का दिमाग खराब है। क्योंकि कोई आदमी कैसे कह सकता है कि, "सब छोड़कर मेरी शरण में आ।" यह तो निपट अहंकार मालूम पड़ता है। वह तो पागलपन की आखिरी ऊँचाई कि एक आदमी कहे कि सब छोड़कर मेरी शरण में आओ। मैं ही सब कुछ हूँ।

अगर यह सूत्र हो हम "फ्रॉडिमन मनसविद्" से पूछें कि इसका अर्थ यह है? तो वह कहेगा छोटे से छोटा, बड़े से बड़ा भी मैं ही हूँ। यह दिमाग खराब हो गया है, न्यूरॉटिक है। या तो छोटे हो सकते हैं या बड़े हो सकते हैं। दोनों तो एक साथ होने की बात ही गलत है। और अगर वह सुने कि यह भी कह रहा है ऋषि कि इस विचित्र ससार को मेरा ही रूप मानना और मैं ही पुरातन पुरुष हूं जिससे यह सब जन्मा वह मैं ही हूँ। और जिसमें यह सब लीन होगा वह अन्तिम भी मैं ही हूँ। तो वह कहेगा कि यह आखिरी बात हो गई। इस आदमी ने सब होश खो दिये।

यह जो अहंकार (Ego) है, इतना बड़ा हो गया है कि पुरातन को भी घेर रहा है। यह अहंकार इतना बड़ा गुब्बारा हो गया है, इसने सब घेर लिया है। "फ्रॉडिमन मनसविद्" "अहं ब्रह्मास्मि—मैं ब्रह्म हूं" इस घोषणा को अहकार की आखिरी विक्षिप्तता के अतिरिक्त कुछ भी नहीं मान सकता। और अगर तर्क से चलें तो वह ठीक कहता है। अगर हम यह मान लें कि तर्क ही चलने का

एक उपाय है तो वह बिलकुल ठीक कहता है।

लेकिन बड़े मजे की बात है, कि जो ऐसा कह पाता है कि उसके जीवन में ऐसे फूल खिलते हैं—तो कह पाता है "अहं ब्रह्मास्मि"। उसके जीवन में ऐसे फूल खिलते हैं, उसके जीवन से ऐसा संगीत बहता है, उसके जीवन में ऐसी आनन्द की किरणें फूटने लगती हैं, उसके जीवन में चारों तरफ शीतल हवाएँ बहने लगती हैं—न केवल वह आनन्द से भर जाता है, उसको जो छू लेता है निकट से, उसके पास जो आता जाता है वह भी किसी अपूर्व प्रसाद का भागीदार हो जाता है।

लेकिन फ्रॉयड कहता है कि ये सब पागल हैं। वह रात अँधेरे में बिना बिजली जलाये नहीं सो सकता। सदा भयभीत है। जरा-सा कोई उसके खिलाफ बोल दे तो वह इतना क्रोधित हो जाता है कि उस क्रोध में कुछ भी कर सकता है। बुद्ध को वह समझेगा कि वह (Abnormal) एबनार्मल हैं, कुछ थोड़ा चूक गये हैं। खुद को वह समझता है, नार्मल। अगर बुद्ध ऐबनार्मल हैं तो फिर ऐबनार्मल होना ही उचित है। अगर बुद्ध पागल हैं तो फिर पागल होना ही उचित है।

अगर फ्रॉयड बुद्धिमान है तो फिर ऐसी बुद्धिमानी, बुद्धिहीन ही चुनेंगे। लेकिन तब फ्रॉयड का कसूर नहीं है। फ्रॉयड वैज्ञानिक है। बुद्धि उसके पास विश्लेषण की है। संश्लेषण का उसके पास कोई उपाय नहीं। हाथ में उसके तलवार है, चीजें वह काटता है। काटते ही खण्ड हाथ लगता है, अखण्ड खो जाता है। फूल के टुकड़े हाथ लगते हैं, फूल का सौंदर्य खो जाता है। कविता के शब्द हाथ लगते हैं काव्य खो जाता है। चित्र के टुकड़े हाथ लगते हैं, रंग—कैनवास हाथ लगते हैं, चित्र की समग्रता खो जाती है। वह भी क्या करे ? जिस प्रयोगशाला की टेबल पर वह बैठा है, वहाँ काटने के सिवा कोई उपाय नहीं। काट-काटकर टुकड़े हाथ लगते हैं। एक सुन्दरतम चित्र भी टुकड़ों में कुरूप हो जाता है, बेमानी हो जाता है।

मेरी अपनी दृष्टि यह है कि सार्त्र और उस तरह के सारे विचारक जो कहते हैं -कि जीवन अर्थहीन (Meaningless), है उसका कारण यही है कि टुकड़े उनके हाथ में आये हैं, जीवन के।

एक कविता के पच्चीस टुकड़े कर-कर के बाँट दें लोगों में, अर्थहीन हो जाएगी। अर्थ तो जोड़ में था।

एक मजेदार घटना घटी है वॉनगॉग के जीवन में— एक डच पेन्टर था, अद्‌भुत। किसी स्त्री ने कभी उसको प्रेम नहीं किया, चेहरा उसका कुरूप था। एक वेश्या ने सिर्फ दयावश प्रेम किया। चेहरे में और तो कोई ऐसी चीज दिखाई नहीं पड़ी कि जिसकी प्रशंसा करे। वॉनगॉग के कान की प्रशंसा कर दी कि तुम्हारे कान बड़े सुन्दर हैं। यह पहला मौका था जीवन में कि वॉनगॉग के किसी हिस्से की किसी ने प्रशंसा की हो, "सुन्दर स्त्री ने।" तो वॉनगॉग ऐसा अभिभूत हो गया कि घर गया, कान काटा कपड़े में लपेटा और वेश्या को भेंट कर आया। वेश्या तो घबरा गयी। उसने कहा यह तुमने क्या किया? वॉनगॉग ने कहा—कि किसी ने कभी मेरी किसी भी चीज की तो प्रशंसा नहीं की। तुम्हें कान इतना पसन्द आ गया तो मैंने सोचा कि भेंट दी जाये। लेकिन कटा हुआ कान बेमानी है, अर्थहीन है। उसमें अगर कोई अर्थ था भी तो सारे शरीर की संयुक्तता में था। यह वेश्या इसको फेंकने के सिवाय, उसको क्या करेगी?

करीब-करीब पूरे जीवन के साथ वैज्ञानिक के प्रभाव में, तर्कशास्त्री के प्रभाव में हमने यही किया है। सब चीजें काट डाली हैं। कटकर सब चीजें व्यर्थ हो गयी हैं! किसी चीज में कोई अर्थ और किसी चीज में कोई अभिप्राय नहीं रहा। और किसी चीज में कोई रस नहीं रह गया। क्योंकि जीवन की धार ही कट गई और सूख गई। सब मुर्दा-मुर्दा हो गया है।

मृत्यु हो सकती है खण्डों में, जीवन सदा अखण्ड में है। और यह अखण्डता समस्त आयामों में है। इसलिए सूत्र कहता है—पुरातन पुरुष मैं हूँ, सबसे पहले जो था वह मैं ही हूँ। सब के अन्त में जो होगा वह भी मैं ही हूँ।

जिसने सबको अच्छादित किया है वह भी मैं ही हूँ। जो सबसे आच्छादित होकर भीतर बैठा है वह भी मैं ही हूँ। यह मैं की घोषणाएँ नहीं हैं। इनका मैं से कोई भी सम्बन्ध नहीं। यह केवल अनुभूत तथ्य हैं, जो उन्होंने जाने जिन्होंने तर्क को फेंका और रहस्य को

अंगीकार किया। और जिन्होंने बुद्धि को बुद्धि के साथ बहुत प्रयोग कर-करके देखा, और पाया कि बुद्धि जीवन को छीन लेती है। मृत्यु के हाथ में दे देती है। अगर बुद्धि के हाथ में सब कुछ रहा तो जगत् एक मरघट के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हो सकता।

जीवन—बुद्धि से बड़ा है। और जीवन बुद्धि के पार है और बुद्धि का कोई तालमेल जीवन से नहीं हो पाता। असल बात यह है कि बुद्धि केवल जीवन का एक उपकरण है, उपादेय है सीमाओं में, मर्यादाओं में। जीवन बड़ा है, और विराट है।

क्षुद्र से जब भी हम विराट को समझने चलेंगे तो क्षुद्र अपनी सीमाएँ विराट पर भी थोप देगा। जीवन को जीकर जाना जा सकता है, सोचकर नहीं। जीवन को जीवन होकर जाना जा सकता है, विचार कर नहीं। और जीवन जैसा है उसे वैसा ही जानने की हिम्मत हो तो ही जाना जा सकता है। अगर पहले से ही हम तय कर लें कि जीवन ऐसा होना चाहिए तो ही स्वीकार करेंगे तो फिर कभी नहीं जाना जा सकता, बुद्धि पहले ही तय करके चलती है। बुद्धि निर्णय पहले ले लेती है। बुद्धि कहती है जो संगत है वही सत्य होगा। और सत्य बिल्कुल असंगत मालूम होता है तब मुश्किल खड़ी हो जाती है। बुद्धि कहती है दो और दो मिलकर चार होने ही चाहिएँ। और जिन्दगी बड़ी विचित्र है यहाँ कभी दो और दो मिलकर पाँच भी हो जाते हैं, कभी दो और दो मिलकर तीन भी रह जाते हैं।

जिन्दगी जीवन्त है मुर्दा चीजों को अगर जोड़ो तो दो और दो मिलकर चार ही होते हैं। लेकिन जिन्दा चीजों को जोड़ो तो कुछ भी हो सकता है, कुछ कहा नहीं जा सकता।

अगर हम दो प्रेमियों को अलग-अलग नापें और फिर वह प्रेम में पड़ जाएँ तब नापें तो क्या आप समझते हैं कि दो मिलकर वे सिर्फ दो ही होंगे, वे हजार गुना बढ़ जाते हैं, दो ही नहीं होते अगर कभी आपने प्रेम का क्षण जाना है तो आप पायेंगे कि प्रेम के क्षण में आपकी न मालूम कितनी उर्जायें जग जाती हैं, जो कभी नहीं जगीं। जब दो प्रेमी मिलते हैं तो दो व्यक्ति नहीं मिलते, दो जगत् मिल जाते हैं। और जोड़ दो नहीं होता, जोड़ कुछ भी होता है। और

प्रतिपल जोड़ बदलता रहेगा। सुबह कुछ और होगा, दोपहर कुछ होगा, साँझ कुछ होगा, आज कुछ होगा, कल कुछ होगा, कुछ कहा नहीं जा सकता।

जिन्दगी बेबूझ है, तर्क की पकड़ के बाहर है। तर्क मुर्दा ढाँचे हैं। जिन्दगी किसी ढाँचे को मानती नहीं। जिन्दगी सब ढाँचों को तोड़कर बहती है। जिन्दगी बढ़ती चली जाती है, कोई नियम नहीं मानती। लेकिन गहन स्वतन्त्रता है, अराजकता नहीं। इस गैरनियम में भी एक गहरी संगति है लेकिन वह संगति उन्हीं को दिखाई पड़ेगी जो तर्क की संगति का ढाँचा जबरदस्ती बिठाने की कोशिश न करें।

मैंने सुना है, एक यूनानी लोककथा है। एक आदमी के पास एक बहुमूल्य बिस्तर था। एक बहुमूल्य चारपाई थी, स्वर्ग की, हीरे-जवाहरातों से जड़ी। इसलिए मँहगी थी चारपाई, और बिस्तर भी इतना ही मँहगा था कि उसे तो छोटा-बड़ा नहीं किया जा सकता था। जब कोई मेहमान उसके घर आता तो वह उसे सुलाता। वह मेहमान को छोटा-बड़ा कर देता। अगर मेहमान की टांग बाहर निकलती तो टांग काट देता। चारपाई बहुत कीमती थी। और चारपाई को छोटा-बड़ा नहीं किया जा सकता था। और मेहमान की सेवा की दृष्टि से मेहमान को तकलीफ न हो। अगर पैर लम्बे होते तो पैर काट देता। अगर गर्दन बाहर जाती तो गरदन काट देता। अगर पैर छोटे होते तो दो पहलवान लगाकर खिचाई करवा देता ताकि ठीक से बिस्तर पर वह आदमी आ जाये। यह आदमी बिल्कुल तर्कयुक्त था।

यह आदमी बुद्धिमानों की आखिरी सीमा है। वही कर रहा था जो भी बुद्धिमान करते हैं। वही कर रहा था जो सभी तर्कशास्त्री करते हैं। ढाँचा तय है आपको हम छोटा-बड़ा कर लेंगे, आपके खातिर ढाँचा बदलने वाला नहीं। धर्म का यही भेद है। धर्म कहता है कि हम जीवन जैसा है वैसा ही उसे जानेंगे। जैसा है जीवन वैसा ही उसे जिएँगे। बुद्धि को ऊपर से आरोपित करने का कोई आग्रह हमारा नहीं है। तभी अखंड जाना जा सकता है और तभी रहस्य में प्रवेश है।

○○